महाभारत के पात्र २९



M-29

श्रीकृष्ण

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

महाभारत के पात्र :: ११

श्रीकृष्ण

नानाभाई भट्ट

१६७६



सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पांचवीं बार। १६७६

मूल्य : [illegible]
संशोधित मूल्य...३....

मुद्रक
युवा मुद्रण
७, न्यू वजीरपुर इण्डस्ट्रियल कॉम्प्लैक्स,
दिल्ली-११००५२

प्रकाशकीय

रामायण और महाभारत भारतीय वाङ्मय की अमूल्य निधियां हैं। उनमें जो जितनी गहरी डुबकी लगाता है, उतने ही कीमती रत्न उसके हाथ लगते हैं।

गुजराती के विख्यात लेखक नानाभाई भट्ट ने इन दोनों ही महान् ग्रंथों के प्रमुख पात्रों का बड़ी प्रभावशाली शैली में चरित्र-चित्रण किया है।

महाभारत के पात्रों की इस पुस्तक-माला में उन्होंने पाठकों को अत्यन्त प्रेरणादायक सामग्री दी है। प्रत्येक पात्र बड़े ही सजीव रूप में हमारे सामने आकर खड़ा हो जाता है।

इस माला में ग्यारह पुस्तकें हैं। वे सभी पठनीय और मननीय हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान लेखक ने श्रीकृष्ण के चरित्र पर प्रकाश डाला है। पाठक जानते हैं कि महाभारत में श्रीकृष्ण की क्या भूमिका थी। इस पुस्तक को पढ़कर उन्हें गहराई से समझने में सहायता मिलती है।

पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे इस तथा इस माला की सभी पुस्तकों को मनोयोगपूर्वक पढ़ें और दूसरों से पढ़ने का आग्रह करें।

—मंत्री

अनुक्रम



१ / पाण्डवों के सलाहकार

पाण्डवों का द्रौपदी से विवाह हो गया। उसके बाद धृत-राष्ट्र ने उन्हें फिर से हस्तिनापुर में बुला लिया और राज्य का आधा भाग उन्हें दे दिया। पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ में अपना राज्य स्थापित किया।

पाण्डव वीर-पुत्र थे, हिमालय के जंगलों में उनका जन्म हुआ था, तपोवन के वातावरण में उन्हें जीवन के आदि संस्कार प्राप्त हुए थे, कुंती जैसी क्षत्राणी का दूध पीकर वे बड़े हुए थे, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य जैसे समर्थ गुरुओं ने उन्हें विद्या प्रदान की थी।

फिर भी अबतक वे बिना राज्य के भटकते रहे थे। दुर्योधन और उसकी ईर्ष्या पाण्डवों के पीछे पड़ी हुई थी। हस्तिनापुर की राजगद्दी को सुशोभित करने योग्य पाण्डव गुप्त वेश में मारे-मारे फिर रहे थे और जैसे-तैसे जीवन बिता रहे थे। अपने क्षात्रतेज को सिंहासन पर से दीप्त करने का उन्हें अवसर ही नहीं मिला था।

आज प्रथम बार उन्हें वह अवसर मिला। इन्द्रप्रस्थ के सिंहासन पर महाराज युधिष्ठिर राज्य की बागडोर किस प्रकार थामते हैं, इस ओर केवल प्रजा की ही नहीं, अपितु सारे भारतवर्ष के राजा-महाराजाओं की दृष्टि लगी थी। दुर्योधन की अभिलाषा थी कि पाण्डव राज्यकर्त्ता के रूप में असफल सिद्ध हों और प्रजा का हृदय उसकी ही ओर बना रहे। पाण्डवों की यह अभिलाषा थी कि महाराज युधिष्ठिर की धर्म-मर्यादा प्रजा के हृदय-तल तक पहुंच जाय और रक्त के मद तथा राज्य के मद में चूर दुर्योधन का गर्व गलित हो।

ऐसी परिस्थिति में इन्द्रप्रस्थ की राजसभा सबका ध्यान

खींचे, यह स्वाभाविक था। इस राजसभा की रचना मय नाम के एक दानव ने की थी। युधिष्ठिर का यह सभा-भवन, इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि सबके सभाभवनों से श्रेष्ठ था। स्थापत्य और कला की जितनी भी कुशलता दानवों में थी, वह सारी मय दानव ने इस सभा-भवन के निर्माण में खर्च कर दी थी। देश-विदेश के अनेक लोग इसे देखने के लिए आते थे और आश्चर्य-चकित होकर लौटते थे।

युधिष्ठिर की यह राजसभा केवल ईंट-चूने की ही रचना नहीं थी, बल्कि वह देश-विदेश के महापुरुषों का संगम-स्थान था। युधिष्ठिर की सभा में व्यास और जैमिनि जैसे द्रष्टा आते और अपनी आर्ष दृष्टि का प्रकाश डालते थे, नारद मुनि जैसे विश्व-परिव्राजक आते और विश्व के महा प्रश्न उपस्थित करते थे, द्रुपद और विराट जैसे महाराजा आते और भारतवर्ष के नरेन्द्र-मंडल के मंतव्य सामने रखते थे, श्रीकृष्ण जैसे युगपुरुष आते और मानव-जीवन के अनेक गूढ़ प्रश्नों पर युगदृष्टि का प्रकाश डालते थे।

इसके सिवा भीम, अर्जुन आदि सदा दिग्विजय करने के लिए जब निकलते थे तब चारों दिशाओं से नये परिचय, नये विचार, नई दृष्टि, नई बातें और बहुत-कुछ लेकर आते। पाण्डवों की बुद्धि नित्य नये परिचयों से सुसंस्कृत और तीक्ष्ण हो रही थी। अपने समान पद के द्वारा अपने से उच्च लोगों से नित्य मिलते रहने से महाराज युधिष्ठिर को राज्य-मद चढ़ता नहीं था और चढ़ता दिखाई भी दिया तो तुरन्त धुल जाता था।

●

इसी सिलसिले में एक बार नारदजी घूमते-फिरते इन्द्रप्रस्थ में आ पहुंचे। नारदजी के आने का समाचार सुनकर युधिष्ठिर उठ खड़े हुए और अर्घ्य लेकर सामने उपस्थित

हुए। उन्होंने नारद मुनि का पूजन किया, उनके चरणों में शीश नवाया और फिर उन्हें एक उच्च आसन पर बिठाकर हाथ जोड़ कर खड़े हो गए।

"पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर! सकुशल हो न?" नारदजी ने पूछा।

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "महामुनि! जहां आपकी कृपा हो, वहां कुशल तो होनी ही हुई। मेरे अहोभाग्य कि आज यहां आपके चरण पड़े। कहिए, आज्ञा?"

"राजन्!" नारद बोले, "आज्ञा तो कुछ भी नहीं है; परन्तु तुम जैसे राजा को आज्ञा न दी जाय तो फिर दी भी किसे जाय?"

युधिष्ठिर ने कहा, "महाराज! आज्ञा कीजिये। आपकी आज्ञा तो मेरे जैसों के लिए जीवन का एक आनन्द है।"

"राजन्!" नारद बोले, "आज यदि सारे भारतवर्ष में कोई बात समाज को पीड़ित कर रही है तो वह राजा-महाराजाओं का मद है। अपने ही एक भाई दुर्योधन को देखो। तुम्हारे भीम को विष खिलाते उसका हृदय जरा भी न कांपा; तुम्हें जीवित जला देने का विचार करते उसे जरा भी लज्जा न आई। वह यही समझता है कि धृतराष्ट्र का रुधिर-ही-रूधिर है, पाण्डु का रुधिर तो सफेद-पीला पानी है। आज तुम्हें राज्य का अर्ध भाग मिला है, इससे खुश न होना। इस समय वह हस्तिनापुर में बैठे-बैठे इन्द्रप्रस्थ के तुम्हारे शयनागार में निकलने वाली सुरंगें खुदवा रहा होगा। फिर भी दुर्योधन अच्छा है। उसमें ईर्ष्या है, पर मद कम है। इसकी अपेक्षा भी बहुत अधिक मदमत्त राजा भारत में पड़े हुए हैं और पृथ्वी को पीड़ित कर रहे हैं।"

युधिष्ठिर ने नम्र भाव से पूछा, "महाराज! मैं इस विषय में क्या कर सकता हूं?"

नारदजी ने तुरन्त उत्तर दिया, "तुम इन सब राजाओं का

दर्प चूर्ण कर सकते हो। तुम धर्म-पुत्र हो। सारे देश के ऋषि-मुनि तुमसे धर्म-राज्य की स्थापना की आशा कर रहे हैं। ये सारे मदमत्त राजागण सत्ता के मद में अंधे बने हुए हैं और प्रजा को और अपने से छोटे राजाओं को पीड़ित करने में कोई कमी नहीं रख रहे हैं। लोगों से बड़े-बड़े कर वसूल करके, मनमाने ढंग से उड़ाते हैं। इन समस्त राजाओं को तुम अपना प्रताप दिखाओ। एक राजसूय यज्ञ करके तुम सार्वभौम बनो और धर्म-राज्य कैसा हो सकता है, इसका आदर्श भारतवर्ष में फिर से उपस्थित करो।"

युधिष्ठिर बोले, "आप महात्मा हैं। अभी तो कल ही मैं राजगद्दी पर बैठा हूं। मुझे ऐसा नहीं प्रतीत होता कि इतने ही समय में मैं राजसूय यज्ञ का अधिकारी बन गया हूं। महाराज! मैं तो आपसे यही मांगता हूं कि यह पद मुझे अंधा न बनाए, इस सिंहासन पर बैठकर मैं उड़नेवाला न बन जाऊं, अपनी प्रजा का तिरस्कार करनेवाला न बन जाऊं; इस सिंहासन पर बैठे रहने पर भी मुझे अपनी स्तुति चुभे; अपनी निंदा मैं सुन सकूं, और उससे सार निकाल सकूं, किसी पर अत्याचार न करूं। गरीबों की आवाज सुनने के लिए मेरे हृदय के द्वार सदा खुले रहें, मेरा खजाना प्रजा के हित के लिए सदा खुला रहे, मैं प्रजा के सुख में सुखी और दुःख में दुखी रहूं। मैं अपने आपको प्रजा का संरक्षक मानूं। इतना सब यदि मैं आपके आशीर्वाद से कर सका तो मैं यही समझूंगा कि मैंने राजसूय यज्ञ कर लिया।"

नारदजी ने विचार करते हुए कहा, "युधिष्ठिर! तुम्हारी बात सच है। तुम इस प्रकार राज्य करोगे तभी माना जायगा कि तुमने धर्मराज्य की स्थापना की है। परन्तु इतना करके ही तुम बैठे रहो, यह ठीक नहीं। यह सब तो तुम कर ही रहे हो

और सदा करते रहो; परन्तु यदि तुम्हारे आस-पास सारे मदोन्मत्त राजा आनन्द मनाते रहेंगे तो तुम अपने धर्म-राज्य को संकट में समझना। तुम राजसूय यज्ञ करके सार्वभौम पद प्राप्त। तुम धर्मराज्य के सुन्दर स्वप्न देखते हो, इसीसे इस यज्ञ के लिए तुम्हारा अधिकार सिद्ध होता है। तुम्हारी शक्ति केवल इन्द्रप्रस्थ के चारों कोनों में सीमित रहे, यह उचित नहीं है। तुम जैसे अधिकारी पुरुषों को तो अन्य अनेक राजाओं को अपने साथ लेकर सारे युग को बदल देना चाहिए।"

युधिष्ठिर बोले, "आपका आग्रह है तो मैं विचार करूंगा। अपने भाइयों की सलाह लूंगा और हमारे हितैषी श्रीकृष्ण से पूछकर जो उचित जान पड़ेगा, अवश्य करूंगा।"

नारदजी ने उठते-उठते कहा, "जो उचित जान पड़े, वही करो। मैं तुम्हें राजसूय यज्ञ का अधिकारी समझता हूं। मुझे विश्वास है कि हमारे युग की गति को ठीक-ठीक पहचानने वाले श्रीकृष्ण भी मेरे ही मत की पुष्टि करेंगे। तुम जैसे पाँडु के एक पुत्र को राजगद्दी मिली है, इसकी हमारे लिए विशेष कीमत नहीं है। हम चाहते हैं मदोन्मत्त राजाओं के भार से पीड़ित पृथ्वी को तुम्हारे द्वारा बचाना। आज जहां लोकजीवन वीरान पड़ा है, वहाँ तुम हरी-भरी फुलवाड़ी खड़ी कर दो, यही तुम्हारी और इन्द्रप्रस्थ की राजगद्दी का मूल्य है। अच्छा राजन्! अब विदा लूंगा।"

इतना कह कर नारदजी चल दिये।

✿

"महाराज श्रीकृष्ण!" युधिष्ठिर बोले, "मेरा और मेरे भाइयों का यह निश्चय है कि आपकी सम्मति के बिना एक पग भी आगे न बढ़ाना। नारदजी का आग्रह मैंने आपको सुना दिया। मेरे भाई, मेरी प्रजा और देवी द्रौपदी भी मुझसे आग्रह कर

रही हैं।"

"द्रौपदी भी सहमत है ?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

सहदेव बोले, "देवी द्रौपदी तो अवभृथ[1] स्नान करने के लिए आतुर हो रही हैं।"

युधिष्ठिर ने कहा, "यह सच है कि ये सब मुझसे आग्रह कर रहे हैं, परन्तु श्रीकृष्ण ! यदि मैं तराजू के एक पलड़े पर इन सबका आग्रह और दूसरे पर आपके एक सामान्य शब्द को रखूं तो मेरे लिए तो आपके शब्द का ही भार अधिक होगा। द्रुपद की सभा में जब हमें कोई भी नहीं जानता था तब आपने हमें अपनाया और बड़े-बड़े राजाओं की आंखों को चकाचौंध करनेवाली वस्तुएं आपने हमें भात में दीं। अभी कल की बात है। खाण्डव वन में नागों का संहार करने में अर्जुन के पीछे आपकी ही शक्ति थी। श्रीकृष्ण ! सत्य कहता हूं, आप केवल हमारे मामा के पुत्र नहीं हैं, आपने हमारे जीवन में वह स्थान ले लिया है, जो कभी मिट नहीं सकता। मेरा और मेरे भाइयों का यदि उत्कर्ष होगा तो आपके ही द्वारा होगा। इसलिए श्रीकृष्ण ! इस राजसूय के विषय में मैं आपकी स्पष्ट सम्मति के अनुसार ही चलना चाहता हूं।"

श्रीकृष्ण बोले, "यदि तुम सबकी इच्छा है, नारद का आग्रह है और स्वयं महाराज युधिष्ठिर को कोई दुविधा नहीं है तो राजसूय यज्ञ कर लेना चाहिए।"

युधिष्ठिर ने आगे बढ़कर कहा, "महाराज ! यह बात नहीं है। हमारी इच्छा मन में रह सकती है, नारदजी का आग्रह एक ओर हटाया जा सकता है। आज की परिस्थिति में राजसूय यज्ञ करना उचित जान पड़े तो आप 'हाँ' कह दीजिए

---

[1] यज्ञ के अन्त में राजा और रानी के अनेक पवित्र जलों से करने वाला स्नान।

ग्राप निश्चित जानिये, 'हाँ' या 'ना' का निर्णय ग्राप ही पर ग्रवलंवित है।"

श्रीकृष्ण शान्ति-पूर्वक वोले, "तव मुझे तो तुम्हारे इस यज्ञ में एक बड़ी वाधा दिखाई दे रही है।"

भीम ने ग्रातुर होकर पूछा, "कौन-सी?"

"तुम जरासंध को जानते हो?"

भीम ने उपेक्षा से पूछा, "कौन, गिरिव्रज का जरासंध?"

"हाँ, वही। परन्तु भीमसेन! वह ऐसा व्यक्ति नहीं है कि तुम ग्रौर सहदेव उसे हँसी में उड़ा दो। ग्राज है तो यह ग्रस्सी वरस का बूढ़ा, परन्तु याद रखना कि हमारे-तुम्हारे जैसों की ग्रच्छी तरह खवर ले सकता है!"

युधिष्ठिर चिंतातुर होकर बोले, "जरासंध के विषय में ग्रापका क्या सुझाव है?"

"जवतक यह जरासंध है तबतक तुम्हारा राजसूय यज्ञ शान्ति-पूर्वक नहीं हो सकेगा।" श्रीकृष्ण वोले, "इस ग्रोर के राजाग्रों में जरासंध को सार्वभौम पद प्राप्त है। तुम्हारे राजसूय यज्ञ करने से उसका ग्रचल सिंहासन डोल उठेगा। जवतक वह जीवित है तबतक तुम्हारा राजसूय यज्ञ नहीं हो सकता।"

ग्रर्जुन वोला, "राजाग्रों ने उसका सार्वभौम पद स्वीकार किया है?"

श्रीकृष्ण ने कहा, "भाई! तुम क्यों भूलते हो? सार्वभौम पद क्या सवके स्वीकार करने पर ही कोई धारण करता हैं? सावभौम होने वाला क्या सबके हृदय खोलकर देखने वैठता है? वह ग्रपनी तलवार के वल पर ही ग्रपना पद स्थापित करता है। राजागण मन में भले ही वड़वड़ाते रहें, उनकी गर्दनें दवा देना ही सार्वभौम पद है।"

"यह तो वड़ा ग्रत्याचार कहा जायेगा।" युधिष्ठिर बोले।

"हां, यह तो स्पष्ट है", श्रीकृष्ण ने कहा, "इस प्रकार का

सार्वभौम पद अत्याचार पर ही स्थापित होता है; परन्तु इस पर लोक-कल्याण, विश्व-बन्धुत्व, प्रजा-सुख आदि की अनेक परत चढ़ाई जाती हैं। इसलिए वह नग्न अत्याचार दीख नहीं पड़ता और सब उज्ज्वल-ही-उज्जवल नजर आता है। अनेकों राजाओं को वह बन्दी बनाए और कोई चूं तक न करे यह अत्याचार नहीं, तो क्या है?"

"अनेकों राजाओं को बन्दी?"

"हां! जरासंध तो एक पुरुष-मेध यज्ञ करने का विचार कर रहा है। इस यज्ञ की आहुतियों के रूप में वह राजाओं का होम करेगा। अनेक राजा इकट्ठे हो गए हैं। पूरे एक सौ होते ही वह यज्ञ आरंभ करेगा।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"महाराज! क्या कह रहे हैं?" अर्जुन बोल उठा।

श्रीकृष्ण ने शान्ति-पूर्वक कहा, "मैं सच कह रहा हूं।"

अर्जुन बोला, "इस युग में पुरुष-मेध यज्ञ! इतना सुसंस्कृत हो जाने पर भी मनुष्य मनुष्य का होम करते हुए हिचकिचाता नहीं?"

श्रीकृष्ण ने हँसकर कहा, "भाई अर्जुन! तुमने अभी संसार को अच्छी तरह नहीं देखा। मनुष्य की पशुता आज भी मिटी नहीं है। इस पर ऐसे सार्वभौम राजा तो महा-पशु हैं। पशु-बल पर ही उनका सार्वभौम-पद निर्भर है। उनकी सुशोभित राजधानियाँ, पृथ्वी को कंपानेवाली सेनाएं, बड़े-बड़े लोगों को चकित कर देने वाले उनके ठाट-बाट, निरपराध भी देखकर दब जाय, ऐसे प्रभावशाली न्यायासन, हृदय में घुसकर बात का पता लगाने वाले गुप्तचर, ये सब उनके पशु-बल के स्तंभ हैं। साधारण राजा तो यह सब देखकर ही जरासंध के पैरों में लोटने लगते हैं।"...

अर्जुन बीच में बोल उठा, "फिर भी कोई क्षत्रिय-पुत्र आवेश में नहीं आता?"

श्रीकृष्ण ने कहा, "कोई माई का लाल ही आवेश में आ सकता है। तुम सब माई के लाल हो। तुम इतने बलवान हो कि यदि चाहो तो भारतवर्ष को ऐसे जरासंधों के त्रास से छुड़ा सकते हो। आज हमारी मातृ-भूमि ऐसे ही राजाओं के अत्याचारों से त्राहि-त्राहि कर रही है। अर्जुन ! तुम चाहो तो जरासंध को मार सकते हो। जबतक जरासंध जीवित है तबतक युधिष्ठिर की सामर्थ्य नहीं कि वे राजसूय यज्ञ कर सकें।"

भीम तुरन्त बोल उठा, "तो अर्जुन ! चलो, हम उसे समाप्त कर आयें। हिडिम्ब और वक जैसों को ठिकाने लगा चुके तो इस जरासंध की क्या बिसात !"

अर्जुन ने कहा, "भीम ! ऐसा न समझो। जिस जरासंध के कालयवन, शिशुपाल और रुक्मी जैसे साथी हैं, जिसने यादवों से मथुरा खाली करा ली, जिसने इतने अधिक राजाओं को बन्दी बना लिया और उनके मुँह बन्द कर दिये, उस जरासंध को तुम ऐसा-वैसा न समझो।"

"अर्जुन ठीक कहते हैं," श्रीकृष्ण ने कहा, "जरासंध के शरीर में कोई विचित्र चेतना है। तुम उसके दो टुकड़े कर दो, तब भी फिर से जुड़ जाय, ऐसा उसका शरीर है। आज अब उसका पाप का घड़ा भर गया है, इसलिए मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वह मर जायेगा। इस प्रकार के अत्याचारी राजा जब बहुत बड़ी विजय प्राप्त करते हैं तब उस विजय में ही उनकी मृत्यु अंकित हो जाती है। जरासंध आज अपनी प्रतिष्ठा के शिखर पर पहुंच गया है, इसीलिए अब उसे मरना ही चाहिए। तुम उसे मारोगे तो भारतवर्ष की समस्त प्रजा को शान्ति मिलेगी।"

भीमसेन सीना तानकर बोला, "अर्जुन ! चलो, हम चल पड़े। इन्द्रप्रस्थ में सिंहासन स्थापित करके यदि राजसूय यज्ञ न किया तो माता कुन्ती की गोद लजायेगी। बोले, क्या

विचार है ?"

अर्जुन ने कहा, भीमसेन ! जो तुम्हारा विचार, सो मेरा। श्रीकृष्ण को भी अपने साथ लेंगे। इन्होंने भी ऐसे कितनों को यम-सदन पहुंचाया है। इनका मामा कंस, दानव केशी, मल्ल चाणूर, ये सब जरासंध की भिन्न-भिन्न आवृत्तियां ही समझनी चाहिए। ऐसे दुष्टों के अत्याचारों से भारतवर्ष को छुड़ाना ही कृष्ण के जीवन का उद्देश्य है। श्रीकृष्ण ! आप हमारे साथ आइए।"

श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए बोले, "मेरी क्या आवश्यकता है ? तुम दोनों ही पर्याप्त हो।

अर्जुन ने विनती करते हुए कहा, "आपकी छत्र-छाया में हम जरासन्ध जैसे दस अत्याचारियों के लिए भी पर्याप्त होंगे; आपकी छत्र-छाया अवश्य चाहिए। वहां आपको जरासन्ध के साथ युद्ध करने की आवश्यकता नहीं होगी।"

"अच्छी बात है। जब जाना हो, मुझे पहले से सूचना कर देना।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"जब जाने की क्या बात है ?" भीम बोला, "हम अभी चल पड़ेंगे।"

श्रीकृष्ण हँसते हुए बोले, "जरासन्ध को एक सौ पूरा करने में चौदह राजाओं की कमी है। उनकी अपेक्षा उसे भीम मिल जाय तो चौदहों आहुतियां पूरी हो जायें।"

"अथवा," अर्जुन ने कहा, "सौ राजाओं की सौ आहुतियों के बदले अकेले जरासन्ध की एक आहुति पर्याप्त होगी।"

श्रीकृष्ण युधिष्ठिर की ओर घूमकर बोले, "महाराज युधिष्ठिर ! हम तीनों जा रहे हैं। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। बन्दी बने हुए राजाओं की आवाज सारे देश में फैल गई है। आज जरासन्ध का काल उसे पुकार रहा है। युधिष्ठिर ! आप बड़े भाग्यशाली हैं कि आपको भीम और

अर्जुन जैसे भाई मिले हैं।"

"परन्तु श्रीकृष्ण ! इससे भी अधिक भाग्यशाली तो मैं आपको पाकर हूं।" युधिष्ठिर. बोले, "आप जैसे युग-पुरुष जिनके साथ हों, उन्हें चिन्ता किस बात की ? जाइये, श्रीकृष्ण! तीनों शीघ्र वापस आइएगा।"

अर्जुन, भीम और श्रीकृष्ण तीनों रथ में बैठकर गिरिव्रज को ओर रवाना हो गए।

२/ जरासन्ध-वध

"महाराज युधिष्ठिर !" रथ में से नीचे उतरते हुए श्रीकृष्ण बोले, "अपने भीमसेन को आशीर्वाद दीजिए। यह जरासन्ध का वध करके आया है !"

"और भाईसाहब!" युधिष्ठिर के चरणों पर गिरते हुऐ भीम बोला, "श्रीकृष्ण हमें कुशल-पूर्वक लौटा लाये हैं, इसके लिए आप कृतज्ञता प्रकट कीजिए।"

"परन्तु, धर्मराज !" अर्जुन ने हँसते हुए कहा, "भीमसेन जरासन्ध के साथ युद्ध कर रहे थे और श्रीकृष्ण पीछे खड़े हुए इन्हें प्रेरणा दे रहे थे। यह सब मैं शान्ति-पूर्वक देखता रहा, इसके लिए क्या मुझे आशीर्वाद या कृतज्ञता कुछ नहीं मिलेगी ?"

रथ से उतरकर तीनों युधिष्ठिर के पीछे-पीछे सभा-गृह के विशाल खण्ड में पहुंचे और बातें करने लगे।

युधिष्ठिर ने गम्भीर स्वर में कहा, "जरासन्ध के साथ प्रकट में चाहे भीम ने युद्ध किया होगा, परन्तु श्रीकृष्ण ! यदि आप न होते तो मैं जिस रूप में इन दोनों भाइयों को इस समय देख रहा हूं, उसमें कदापि न देख पाता।"

"अवश्य, महाराज !" अर्जुन बोला, "भीम तो घबरा गए थे।"

"ओह ! भगवन् ! भीमसेन ने आंखें फाड़कर कहा,

"कितना बड़ा था जरासन्ध ! अस्सी बरस का बूढ़ा, परन्तु कैसा उसका शरीर ! कितनी चौड़ी छाती ! मैंने बड़ा यत्न किया; परन्तु वह मेरी भुजाओं में न दब सका। मैं युद्ध करते-करते थक गया, पर वह गिरा ही नहीं और अगर गिरा भी तो तुरन्त उठ खड़ा होता था।"

युधिष्ठिर ने कहा, "तब तो जान पड़ता है, आप पर अच्छी तरह बीती।"

"भाईसाहब !" भीमसेन बोला, "मुझे तो ऐसा लगने लगा था कि जरासन्ध मर न सकेगा।"

श्रीकृष्ण हंसते हुए बोले, "ऐसे जरासन्ध जब मरते हैं तब इसी प्रकार मरते हैं। मरने के अन्तिम क्षण तक ऐसा ही मालूम होता है कि यह मरेगा नहीं; परन्तु जब मरते हैं तो क्षण भर में मर जाते हैं। संसार के सभी अत्याचारियों की यही दशा होती है। उनके जीवन की जड़ें तो खोखली हो गई होती हैं, परन्तु ऊपर से देखने वालों को यह नहीं दीख पड़ता। इसलिए उन्हें तो ऐसा ही लगता है कि यह अचानक गिरा है। वस्तुतः तो वह कभी का मर चुका होता है।"

"सच बात है।" अर्जुन बोला, "जरासन्ध के मरने की बात मानने को कोई तैयार नहीं था।"

श्रीकृष्ण ने कहा, "होता कैसे? इतना बड़ा स्थूलकाय सहसा गिर जाय, यह कोई माने तो कैसे माने? लोगों को यह कहां पता कि ऐसे स्थूलकाय की हृदय-गति तो सहसा ही रुक जाती है।"

"भाईसाहब !" अर्जुन बोला, "जरासन्ध को मारकर जब हम बन्दी राजाओं को छुड़ाने कारागार में गए तब वे बेचारे राजागण हाथ जोड़कर हमसे कहने लगे कि क्यों हमें सता रहे हो? जरासन्ध कभी मर नहीं सकता।"

"ऐसी बात हुई ! जरासन्ध का इतना प्रभाव था ?"

युधिष्ठिर बोले।

"जरासन्ध का प्रभाव नहीं, राजाओं का भय।" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, "जरासन्ध का राजाओं पर अत्याचार करने में उसके अपने बल की अपेक्षा राजाओं का भय अधिक बड़ी बात थी।"

"परन्तु श्रीकृष्ण!" युधिष्ठिर ने कहा, "जिस जरासन्ध ने यादवों से मथुरा छुड़ाई, जिसनें इतने राजाओं को बन्दी बनाया और जिसकी मगध पर धाक जमी हुई थी, उसे आप किस प्रकार मार सके?"

श्रीकृष्ण बोले, "महाराज युधिष्ठिर! जरासन्ध को हमने किस प्रकार मारा, उसके नगर में किस प्रकार प्रवेश किया, वहाँ कैसा वेश धारण किया और उसके साथ क्या-क्या बातें कीं, यह जानना हो तो अर्जुन आपको विस्तार से कहेंगे।"

"यह सुनने की इच्छा किसे नहीं होगी? परन्तु इसे विस्तार से कहने में बड़ा समय लगेगा, इसलिए इस समय तो आप ही संक्षेप में सुना दें।" युधिष्ठिर आतुर हो उठे।

"मैं ही सुना देता हूं।" श्रीकृष्ण बोले, "जरासन्ध इतना बलवान होने पर भी गरीबों की आहों से मर रहा था। महाराज! जो सार्वभौम पद समस्त राजाओं की मैत्री और सहयोग के बदले, उनकी गर्दनों पर निर्मित होता है, उसे तो सुलगता हुआ ही समझना चाहिए। उस पद पर बैठा हुआ राज्य कब जलकर भस्म हो जायगा, इसका किसी को पता नहीं होता। ऐसे बलवान दीखने वाले राजा को एक कंकड़ी भी गिरा देने में समर्थ हो जाती है। ईश्वर की सृष्टि में कौन-सी वस्तु बलवान और कौन-सी निर्बल है, इसका निश्चय करना सहज नहीं है, अन्यथा भीमसेन जरासन्ध को मार सकता? परन्तु भीमसेन के बल के पीछे लाखों त्रस्त लोगों के

संकल्प का बल था, इसी से भीमसेन की विजय हुई।"

युधिष्ठिर ने कहा, "हमें तो इसमें आपका बल प्रतीत होता है।"

"आपको प्रतीत होता होगा।" श्रीकृष्ण बोले, "महाराज! यह याद रखिए, ऐसे दुःखी लोगों के आर्तनाद में एक प्रकार की ईश्वरीय शक्ति होती है। ऐसे आर्तनादों से बड़े-बड़े साम्राज्य मिट्टी में मिल गये हैं। इस जरासन्ध की तो बिसात ही क्या? जो साम्राज्य गरीबों को पस्त करता है और मदमत्त होकर अपने बाहुबल पर विश्वास रखता है, उस साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। यदि जरासन्ध ने इस बात को समझा होता और हमारे साथ युद्ध करने की अपेक्षा बन्दी बनाये राजाओं को उसने मुक्त कर दिया होता तो वह शायद बच जाता।"

अर्जुन बोला, "यदि ऐसा करता तो वह जरासन्ध कैसे रहता? श्रीकृष्ण! जरासन्ध आपके मामा कंस का श्वसुर था। उसकी दोनों पुत्रियां रोज उसके कान भरती थीं और हजारों चापलूस राजा उसकी हाँ-में-हाँ मिलाते रहते थे। ऐसी परिस्थिति में जरासन्ध ही क्या, हम भी हों, तो अन्धे बन जायं।"

"खैर!" युधिष्ठिर ने कहा, "अब जरासन्ध का विषय तो समाप्त हुआ। अब बताइये, क्या राजसूय यज्ञ करना उचित है?"

श्रीकृष्ण बोले, "अवश्य! जरासन्ध चला गया तो एक बड़ी विपत्ति टल गई। अभी उसकी टोली के अन्य लोग पड़े हैं; परन्तु जरासन्ध के जाने से वे भी कुछ शिथिल हो गये होंगे।"

युधिष्ठिर ने कहा, "तो फिर अर्जुन! अब हम यज्ञ की तैयारी आरम्भ करें। श्रीकृष्ण! इस कार्य की सफलता का

भी भार आप पर ही है।"

"जिनके भीम और अर्जुन जैसे भाई हैं, उन्हें सफलता देने वाला मैं कौन ?" श्रीकृष्ण बोले, "आपका शुभ संकल्प है, इसलिए सफलता अवश्य मिलेगी। अब आप तैयारी करें। मुझे अपनी सेवा में उपस्थित ही समझियेगा।"

"अर्जुन !" युधिष्ठिर ने कहा, "तुम चारों भाई मिलकर यज्ञ की पूर्व तैयारी करो। अब इस कार्य में विलम्ब नहीं होना चाहिए। महाराज श्रीकृष्ण! आप सब थके हुए हैं। अतः विश्राम कर लें। मैं माता कुंती और द्रौपदी को जाकर यह समाचार सुनाता हूं।"

यह कहकर चारों अलग हो गए।

३/ शिशुपाल-वध

महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भगवान व्यास स्वयं ब्रह्मा बने, सुदामा आंगिरस उद्गाता, याज्ञवल्क्य मुख्य अध्वर्यु और धौम्य ऋषि होता।

समस्त भारतवर्ष के राजा-महाराजा, ब्राह्मण, प्रतिष्ठित वैश्य और शूद्र इस यज्ञ में उपस्थित थे। नकुल स्वयं जाकर हस्तिनापुर से भीष्म, धृतराष्ट्र आदि कुटुंबियों को बुला लाया था; दुर्योधन, कर्ण, शकुनि, जयद्रथ आदि भी सज-धजकर उपस्थित हुए थे। द्रोण, कृपाचार्य आदि भी अपने शिष्यों के पराक्रमों का आनन्द उठाने आये थे। द्रुपद, बलराम, सांब आदि पांडवों के उत्कर्ष से प्रसन्न होकर आये थे। इनके सिवा आंध्रक, द्रविड़ सिंहल, बाह्लिक आदि से सारा इन्द्रप्रस्थ खचाखच भर गया था।

महाराज युधिष्ठिर यज्ञ की दीक्षा लेने के पश्चात् आये हुए राजा-महाराजाओं को समारंभ के भिन्न-भिन्न कार्यों के पद

पर नियुक्त करने लगे। भीष्म और द्रोण को उन्होंने समारंभ की सामान्य देख-भाल का काम सौंपा। ब्राह्मणों के स्वागत के लिए अश्वत्थामा को, राजाओं के स्वागत के लिए संजय को, रत्नों की परीक्षा के लिए कृपाचार्य को, भोजन की व्यवस्था के लिए दुःशासन को, राजाओं की ओर से आनेवाली भेंटें स्वीकार करने के लिए दुर्योधन को और सारे खर्च का हिसाब रखने के लिए विदुर को नियुक्त किया गया। यज्ञ में आये हुए ब्राह्मणों के पैर धोने का काम श्रीकृष्ण ने स्वयं ले लिया।

यज्ञ आरम्भ हुआ। ब्राह्मणों के मंत्रोच्चार से सारा यज्ञ-मंडप गूँज उठा। घृत और अन्न की आहुतियों से तृप्त होते हुए अग्नि की ज्वालाएँ भभकने लगीं। महाराज युधिष्ठिर का निजी ,मंत्री सहदेव, अन्तर्वेदी में खड़ा, आये हुए समस्त राजा-महाराजाओं की ओर दृष्टि डाल रहा था। नारद मुनि एकत्र हुए मानव-समूह को देखकर गहरे विचार में डूब गए थे।

इसी समय पितामह भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा, "बेटा, युधिष्ठिर! अब तुम इन राजाओं की पूजा करो। ये सब राजा-महाराजा आज बहुत वर्षों बाद मेरे आंगन में आए हैं। इसके अतिरिक्त जिन राजाओं ने तुम्हारा सार्वभौम पद स्वीकार किया है, उनका पूजन इसलिए भी आवश्यक है कि तुम्हें राजसूय यज्ञ करने का अभिमान न हो सके। इसलिए तुम प्रत्येक राजा को एक-एक अर्घ्य दो।"

युधिष्ठिर बोले, "पितामह! आप जो कहते हैं, वह यथार्थ है। यह राजसूय यज्ञ करके मैं अभिमानी होना नहीं चाहता। समस्त भारतवर्ष के राजा-महाराजाओं के हृदय में मेरा स्थान बना रहे, यही मेरी अभिलाषा है। पितामह! आप बताइये, एकत्र हुए इस सारे समाज में मैं सबसे प्रथम अर्घ्य किसे दूं?"

भीष्म ने तुरन्त उत्तर दिया, "श्रीकृष्ण को। यहां एकत्र

हुए समाज में ही नहीं, परन्तु सम्पूर्ण मानव-समाज में आज यदि कोई पुरुष प्रथम अर्घ्य का पात्र है तो वह श्रीकृष्ण हैं। इसलिए प्रथम अर्घ्य उन्हीं को दो।"

महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण के समीप जाकर उन्हें विधि-पूर्वक अर्घ्य दिया और श्रीकृष्ण ने उसे स्वीकार किया।

परन्तु सभा में चेदिराज शिशुपाल बैठा था। वह इसे कैसे सहन करता? श्रीकृष्ण को अर्घ्य मिलते-न-मिलते उसका क्रोध भभक उठा, "राजा युधिष्ठिर! तुमने राजाओं की इस सभा में कृष्ण की प्रथम पूजा करके सारे समाज का अपमान किया है। कृष्ण इस प्रकार के पूजन के योग्य नहीं हैं। भीष्म ने किस दृष्टि से कृष्ण के पूजन की सलाह दी, यह मेरी समझ में नहीं आता।

"कृष्ण को तुम इन राजाओं में श्रेष्ठ समझते हो, परन्तु वह स्वयं राजा कहाँ है? राजा बनने का सौभाग्य उसे प्राप्त ही नहीं हुआ और होनेवाला भी नहीं है। हाँ, समाज में वृद्ध-जन पूज्य माने जाते हैं, परन्तु इस सभा में कृष्ण के पिता वसुदेव बैठे हैं, फिर भी तुम किस प्रकार कृष्ण को अर्घ्य दे सकते हो? मैं समझता हूं कि आचार्य आयु में छोटे हों, फिर भी पूज्य होते हैं; परन्तु आचार्य द्रोण यहाँ बैठे हुए हैं। महाराज युधिष्ठिर! तुम्हें पूजन करना था तो व्यास भगवान् नहीं दीख पड़े? भीष्म अच्छे नहीं लगे? अश्वत्थामा या दुर्योधन दृष्टिगोचर नहीं हुए? तुम्हारे श्वसुर द्रुपद पर ध्यान न गया? केवल इस कृष्ण का हो ध्यान आया? मैं समझ रहा हूं कि कृष्ण की पूजा करके तुमने इस मानव-समाज का अपमान किया है और तुम्हें यह सलाह देने वाले भीष्म की बुद्धि का दिवाला निकल गया है। मैं यही कहूंगा कि कृष्ण का पूजन करके तुमने अपनी दीनता प्रद-र्शित की है।

"कृष्ण! कुपात्र की पूजा करने वाला तो निंद्य है ही, परन्तु

बिना अधिकार के ऐसी पूजा स्वीकार करने वाला भी उतना ही निंद्य है। इस पवित्र यज्ञ का हविष्य खा जाने वाला कुत्ता जिस प्रकार दण्ड का पात्र है, उसी प्रकार इस प्रथम अर्घ्य को स्वीकार करनेवाले तुम भी दण्ड के पात्र हो। कृष्ण! युधिष्ठिर ने हम राजा-महाराजाओं का जितना अपमान किया है, उससे कहीं अधिक तुम्हारा अपमान किया है। नपुंसक का विवाह करना, जिस प्रकार उसके लिए बड़े अपमान की बात है, उसी प्रकार तुम जैसों को प्रथम अर्घ्य देना तुम्हारे अपमान की बात है। भारतवर्ष के राजा-महाराजा-गण!

युधिष्ठिर के द्वारा धर्मराज्य की स्थापना होगी, इस आशा से हम सब यहाँ आये थे। लेकिन आज हमने देख लिया कि युधिष्ठिर कितने धर्मात्मा हैं। इनके जैसे दीन और डरपोक राजाओं से हम सब दूर रहें, यही अच्छा है। भीष्म वृद्ध हो गए हैं, इसलिए उनकी बुद्धि भी उन्हें छोड़कर चली गई जान पड़ती है।"

इस प्रकार बोलता हुआ शिशुपाल जब अपना आसन छोड़कर जाने लगा तब उसके साथ कुछ और राजा भी उठ खड़े हुए।

शिशुपाल को जाते देखकर युधिष्ठिर घबराकर बोले, "शिशुपाल! तुम जो बोल रहे हो, वह उचित नहीं है। भीष्म पितामह धर्म के रहस्य को अच्छी तरह जानते हैं और श्रीकृष्ण से भी भली-भाँति परिचित हैं। श्रीकृष्ण ही प्रथम अर्घ्य के योग्य हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। व्यर्थ ही कठोर वाणी से तुम इस उत्सव में विपेक्ष क्यों कर रहे हो?"

युधिष्ठिर को इस प्रकार शिशुपाल को समझाते देखकर भीम ने कहा, "युधिष्ठिर! शिशुपाल को तुम्हारे इस प्रकार दीनता से समझाने की आवश्यकता नहीं। मैं एक बार नहीं, दो बार नहीं, परन्तु हजार बार जोर देकर कहना चाहता हूं कि सम्पूर्ण समाज में—समस्त मानव-समाज में—श्रीकृष्ण ही

प्रथम अर्घ्य के योग्य हैं। हाँ, ये स्वयं अभिषिक्त राजा नहीं हैं, इन्होंने अपने मस्तक पर राज-मुकुट धारण नहीं किया है, फिर भी ये अनेक मुकुटधारी राजाओं से बड़े हैं। इन्होंने अनेक राजाओं के मस्तकों पर मुकुट रक्खे हैं और इनके प्रताप से उनके मुकुट स्थिर रहते हैं। शिशुपाल! तुम्हें क्या यह पता है कि हमारे तुम्हारे जैसे सामान्य राजाओं के मुकुट प्रजा के हृदय में स्थान नहीं बना पाते, परन्तु श्रीकृष्ण विना मुकुट के प्रजा के हृदय में स्थान बनाये बैठे हैं?

"कौन कहता है कि श्रीकृष्ण वृद्ध नहीं? शिष्ट समाज में वृद्धत्व का माप कभी आयु से नहीं किया जाता। यदि ऐसा ही होता तो अनेक नीम और पीपल के वृक्षों को हमें सबसे वृद्ध समझना पड़ता। श्रीकृष्ण आयु में छोटे होने पर भी बुद्धि में बड़े हैं। जीवन के अनेक विकट प्रसंगों में भी इनकी बुद्धि स्थिर रह सकती है, यह दुनिया ने देखा है। तुम चाहे जो समझो, मैं तो यही समझता हूं कि श्रीकृष्ण को प्रथम अर्घ्य दिलवाकर मैंने इन समस्त राजाओं का मान बढ़ाया है।

"चेदिराज! श्रीकृष्ण का पूजन करके युधिष्ठिर ने उचित ही किया है। यदि तुम्हें और अन्य राजा महाराजाओं को यह वात पसन्द न हो तो तुम, जो उचित लगे, सो कर सकते हो।

लेकिन भीष्म की इन वातों की ओर ध्यान न देकर शिशुपाल अन्य राजाओं के साथ मिलकर यज्ञ को भंग करने का आयोजन करने लगा। परिणाम-स्वरूप सारी सभा में कोलाहल प्रारम्भ हो गया। सभा में वढ़ता हुआ शोर देखकर युधिष्ठिर घबराए।

युधिष्ठिर को घबराते देखकर भीष्म ऊँचे स्वर में बोले, "बेटा युधिष्ठिर! घबराने का कोई कारण नहीं है जवतक सिंह सोया रहता है तभी तक कुत्ते भौंका करते हैं। शिशुपाल की और इन राजाओं की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, इसमें कोई

सन्देह नहीं। काल जब मनुष्य को दण्ड देता है, तब उसकी बुद्धि को कुमार्ग पर लगाता है। इस शिशुपाल की यही दशा समझो।"

पितामह भीष्म के इन वचनों से तिलमिलाकर शिशु- पीछे घूमकर बोला, "भीष्म ! तुम तो कुरु-वंश के कलंक हो। ऐसे वचन बोलते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ? जिस प्रकार अन्धा अन्धे को चलाता है उसी प्रकार आज तुम इन पाण्डवों को चला रहे हो। जिस कृष्ण की तुमने पूजा कराई उसके काले कर्मों को सारा जगत जानता है। इस कृष्ण ने अपने मामा का वध किया, यह क्या हम नहीं जानते ? जिनका अन्न खाकर बड़ा हुआ, उन्हें मारनेवाला यह कृष्ण प्रथम अर्घ्य का अधिकारी कैसे हो सकता है ? कृष्ण की गोपियों के साथ की हुई लीलाएं क्या हम नहीं जानते ? फिर इसके पराक्रम को तो सारी दुनिया जानती है। कालयवन के आने पर यह पराक्रमी कृष्ण दुम दबाकर भाग गया। पूछो रुक्मी से। रुक्मिणी की सगाई किसके साथ हुई थी ? परन्तु इस लंपट कृष्ण ने ही उसे भगाकर उसके सारे कुटुम्ब में विष का बीज बो दिया। जरासन्ध को इन तीनों आदमियों ने किस प्रकार कपट से मारा ? यह इनसे पूछो।

"ऐसे कपटी को प्रथम अर्घ्य दिलाने में भीष्म, तुम्हारा दोष नहीं है। तुम्हारा सारा कुल ही इस प्रकार का है। तुम अपनी ही बात देखो। ब्रह्मचर्य का तो आडम्बर किए बैठे हो, लेकिन तुमने अम्बा का हरण किया और फिर उसे भटकते छोड़ दिया। नपुंसकों के ब्रह्मचर्य को साधु पुरुष महत्व नहीं देते। तुम स्वयं पापी हो। अतः कृष्ण जैसे पापी को प्रथम अर्घ्य दिलवाओ, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। परन्तु याद रखना, तुम्हारी मृत्यु निकट है। तुम जैसे मूढ़ की सलाह को पांडव महत्व देते हैं, इससे यही समझना चाहिए कि उनका भी काल निकट है।"

शिशुपाल के ऐसे कठोर वचनों को सुनकर भीमसेन का खून खौल उठा। दाँत पीसता हुआ वह अपने आसन से उछल पड़ा और शिशुपाल को पकड़ने दौड़ा, परन्तु भीष्म ने उसे बीच में ही रोक लिया। शिशुपाल भीम को इस प्रकार क्रोध से लाल-पीला देखकर बोला, "भीष्म ! आने दो भीम को। उसे भी पता लगे कि चेदिराज का बाहुपाश कितना कोमल है। आ जा भीम-सेन ! जरासन्ध को तूने दुष्टता से मार लिया, पर यह शिशु-पाल है।"

इस प्रकार गुस्से से उफनते हुए शिशुपाल को संवोधित करके भीष्म ने कहा, "शिशुपाल ! चेदिराज ? अब हद हो चुकी है। श्रीकृष्ण केवल राजा ही नहीं, राजाओं का भी राजा है; वृद्ध ही नहीं, वृद्धों के भी वृद्ध हैं; ज्ञानी ही नहीं, ज्ञानियों के भी ज्ञानी हैं, कारण कि श्रीकृष्ण युग-पुरुष हैं। वेटा युधिष्ठिर ! मुझे इस शिशुपाल और इसके मित्रों पर तरस आ रहा है। शिशुपाल श्रीकृष्ण को पहचान नहीं सकता, इसलिए पामर है। यहाँ एकत्र हुए सब राजा-महाराजाओं से मुझे कहना चाहिए की युग-पुरुष को परखना और परख कर उसका पूजन करना, उनके चरणों में शीश झुकाना, यह वड़ा कठिन काम है। ऐसा युग-पुरुष हमारी तरह दो हाथों और दो पैरों वाला होता है। इसलिए हमें वह साधारण मनुष्य ही प्रतीत होता है और इसी कारण उसे परखना अधिक कठिन हो जाता है। श्रीकृष्ण हमारे युग के महानतम हैं। उनका अपना जीवन सर्वथा विशुद्ध है। जिन लोगों के अंतःकरण पापों से घिर गए होते हैं, उन्हें ऐसे विशुद्ध जीवन में मलिनता दिखाई देती है। युधिष्ठिर, तुम्हें घबराने का कोई कारण नहीं। यह सभी जानते हैं कि हमारे युग की सारी महेच्छाएं श्रीकृष्ण के जीवन में व्यक्त होती हैं। आज भारत को कष्ट-मुक्त करने में श्रीकृष्ण का वहुत वड़ा हाथ है। अब भी हम सब उनकी ओर दृष्टि लगाये बैठे हुए हैं।"

भीष्म इस प्रकार बोल ही रहे थे कि बीच में ही शिशुपाल बोल उठा, "देख लिया तुम्हारा युग-पुरुष ! ऐसे दुष्ट को युग-पुरुष कहते हुए तुम्हारी जिह्वा कट क्यों नहीं जाती ? युग-पुरुष दूसरों की स्त्रियों के साथ मनमाना विहार किया करते हैं ? युग-पुरुष दूसरों की ब्याही स्त्रियों के साथ विवाह कर लिया करते हैं ? युग-पुरुष जरासन्ध को कपट से मार सकते हैं ? यदि इस प्रकार के मनुष्य युग-पुरुष माने जायंगे तो पृथ्वी को रसातल जाना पड़ेगा। जो लोग इस कृष्ण को युग-पुरुष कहकर इसका गुणगान करते हैं, वे बड़े मूर्ख हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।"

इतनी गरमागरम और कटु बातचीत, महाराज युधिष्ठिर की घबराहट, सहदेव और भीमसेन का क्रोध, भीष्म की सिंह-गर्जना और शिशुपाल की प्रतिगर्जना, शिशुपाल के साथ उठ खड़े हुए राजाओं का कोलाहल, इन सबके बीच श्रीकृष्ण जरा भी क्षुब्ध हुए बिना खड़े थे। जिस प्रकार किसी महासागर की लहरें, बीच में खड़ी चट्टान से टकराकर टूट जाती हैं, उसी प्रकार वे सब हलचलें और कोलाहल उनके साथ टकराये और स्वयं ही टूट गए। अन्त में धीर गम्भीर स्वर में श्रीकृष्ण बोले, "यह जो कुछ बोला जा रहा है, वह शिशुपाल नहीं, उसका काल बोल रहा है। यह शिशुपाल मेरी बुआ का पुत्र है। मैंने भरसक इसे न मारने का अपनी बुआ को वचन दिया है; परन्तु यह स्वयं ही अपनी मृत्यु बुला रहा है।

"यहां एकत्र हुए राजा-महाराजागण ! आप कान लगाकर सुनें। अनेक वर्षों से हमारी भारत-भूमि के गर्भ में किसी भारी उथल-पुथल के लक्षण प्रकट हो रहे हैं। हम क्षत्रियों को और विशेषकर राजाओं को समस्त प्रजा की रक्षा का काम सौंपा गया है; परन्तु हम रक्षा करने के बदले प्रजा की गर्दन पर सवार हो गये हैं। अतः प्रजा बेचारी त्राहि-त्राहि कर

रही है।

"राजाओ ! याद रक्खो, समस्त प्रजा की यह पुकार विश्व-नियंता के दरबार में पहुंच गई है और हमारा मद उतारने वाली शक्तियाँ पृथ्वी-तल पर एकत्र होने लगी हैं। जो राजा इन शक्तियों को पहचान कर सावधान हो जायंगे, वे जीवित रहेंगे, बाकी सब, इन शक्तियों का ज्वालामुखी जब फटेगा, तब उसके खौलते लावे में भस्म हो जायंगे। यह शिशुपाल एक ऐसा ही मदमत्त राजा है। इसका एक दल है। जरासन्ध उसका नेता था। अब शिशुपाल ने वह स्थान लिया है। शिशुपाल ! तू नहीं जानता कि आजतक के तेरे सारे अपराध तेरी माता के लिए मैंने सह लिये हैं। मैं अब भी तेरे अपराध सहन कर सकता हूं, परन्तु विश्व का नियन्त्रण करनेवाली सत्ता मुझसे कुछ और ही कह रही है। मैं चाहूं या न चाहूं; परन्तु धड़ से जुड़ा यह मदोन्मत्त सिर, धड़ से अलग होने के लिए उतावला हो रहा है। यदि मैं यह कहूं तो असत्य नहीं होगा कि हमारे वर्तमान क्षत्रियों का मद उतारने और पीड़ित प्रजा को राजाओं के अत्याचार से छुड़ाने का मुझे व्यसन हो गया है। मुझे विश्वास है कि यह भारतवर्ष की पीड़ित प्रजा की बड़ी-से-बड़ी सेवा है। मैंने स्वयं अपनी शक्ति के अनुसार यह सेवा करना स्वीकार किया है। इसलिए तेरे जैसे अनेक अत्याचारियों के सिरों को मेरा सुदर्शन धड़ से अलग करेगा। शिशुपाल, अपने इष्टदेव का स्मरण कर ले !"

श्रीकृष्ण के इतना बोलते-न-बोलते सुदर्शन-चक्र ने शिशुपाल का सिर धड़ से अलग कर दिया।

युधिष्ठिर की आज्ञा से शिशुपाल का अग्नि-संस्कार हुआ और राजसूय-यज्ञ के लिए आये हुए राजा-महाराजाओं को पांडवों ने विदा किया।

४ द्वैतवन में

पांडवों को जब तेरह वर्षों का वनवास मिला तब श्रीकृष्ण द्वारका में नहीं थे। बाद में द्रौपदी के वस्त्र-हरण की और पांडवों के वनवास की खबर मिलने पर वे पाण्डवों से मिलने वन में पहुंचे।

एक दिन पर्णकुटी के आँगन में पाँडवों और द्रौपदी के साथ श्रीकृष्ण भी बैठे थे। तभी द्रौपदी ने प्रश्न किया, "श्रीकृष्ण! और तो कुछ नहीं, तुमने मुझे बहन के रूप में स्वीकार किया है। लोग मुझे पांचाली न कहकर कृष्णा कहते हैं, फिर भी मेरे वीर श्रीकृष्ण के जीवित रहते मेरी चोटी खींची गई! यह जब मैं स्मरण करती हूं तब मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुमने भी मुझे त्याग दिया।"

"बहन! इस प्रकार दुःखी न हो।" श्रीकृष्ण बोले, "जब यह सब हुआ तब मैं द्वारका में नहीं था। परन्तु इससे हुआ क्या? तुम नहीं जानतीं; परन्तु युधिष्ठिर जानते हैं कि इस प्रकार खींची गई चोटियां अगले दिन ही चक्रवृद्धि ब्याज के साथ अपना हिसाब चुका लेती हैं और ईश्वर के न्यायालय में ऐसे हिसाबों की अवगणना नहीं हो सकती।"

"परन्तु महाराज श्रीकृष्ण!" भीमसेन बोल उठा, "भरी सभा में देवी पांचाली के वस्त्र को खींचते उस अन्धे के पुत्र को जरा भी लज्जा नहीं आई!"

"यही उचित हुआ।" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, "आजतक वे लोग तुम्हें गुप्त रूप से सता रहे थे और प्रकट में ऐसा व्यवहार करते थे जैसे तुमसे बड़ा प्रेम करते हैं; परन्तु द्रौपदी का चीर खींचकर कौरवों ने अपनी पशुता को प्रकट कर दिया है। कौरवों की इस पशुता को अपने नग्न स्वरूप में देखकर संसार को अब कौरवों में विश्वास नहीं रहा है। आज दुर्योधन

प्रजा का विश्वास प्राप्त करने के लिए आकाश-पाताल एक कर रहा है, तुम सबके दोषों का ढिंढोरा पीट रहा है, तुम्हारे शत्रुओं को मिलाने का प्रयत्न कर रहा है और तुम्हारे मित्रों में फूट डालने के लिए यत्नशील है; परन्तु उसे ज्ञात नहीं है कि तुम्हें वनवास देकर उसने अपने आदमियों का भी विश्वास खो दिया है।"

द्रौपदी बोली, "आप चाहे जो कहें, परन्तु आज जब मेरे भीम और अर्जुन वन में भटक रहे हैं तब कौरव हस्तिनापुर के महलों में आनन्द मना रहे हैं।"

"बहन ! यह सत्य है।" श्रीकृष्ण ने कहा, "यों देखने पर ऐसा लगता है कि तुम लोग दुःख में पड़े हो और कौरव सुख मना रहे हैं; परन्तु जो लोग परिस्थिति के गर्भ में दृष्टि डाल सकते हैं, वे स्पष्ट देख सकते हैं कि जहां हस्तिनापुर के महल कौरवों को सुन्दर बनायंगे, वहां यह वनवास तुम सबको अधिक तेजस्वी बनायगा। द्रौपदी ! मैं आजतक के समस्त इतिहास और पुराण पढ़ चुका हूं। जगत् में जिन लोगों के हाथों महान् क्रांतियाँ होनी होती हैं उन्हें क्रांति की तपश्चर्या के रूप में ऐसे दुःख अवश्य सहने पड़ते हैं और दुःखों की शाला से गुजरे बिना क्रांति में कभी आवेश नहीं आता।"

"महाराज ! ये सब तत्व-ज्ञान की बातें हैं।" युधिष्ठिर बोले, "मैं इन सबका दुःख देख नहीं सकता। न जाने किस घड़ी में मुझे द्यूत खेलने की सूझी और मैंने स्वीकृति दी।"

"यह ठीक है।" श्रीकृष्ण ने कहा, "तुम्हारा अपने लिए ऐसा सोचना उचित है। तुम द्यूत न खेलते तो अच्छा था; परन्तु संसार में किस समय कौन-सी शक्ति काम करती है, यह कौन जान सका है? हानि समझते हुए भी तुम्हें खेलने की इच्छा हुई, इसमें कौन जाने, विश्व-नियंता का ही कोई संकेत हो? तुमने इन सबको दुःखी किया है, यह सोचकर दुःखी न हो।

तुम सबके दुःख सहन करने से कौरवों के पुण्यों का ह्रास हो रहा है। सारे कौरव और अंधे धृतराष्ट्र भी दुष्ट हैं। परन्तु अभी उनके पीछे कुरु-कुल का तप जमा है। गांधारी जैसी सती, विदुर जैसा सत्य-वक्ता, भीष्म और द्रोण जैसे धर्मात्मा अभी कौरवों के पक्ष में हैं। इसलिए कौरव उनके बल पर खड़े हैं। ज्यों-ज्यों तुमपर अधिक दुःख पड़ेंगे त्यों-त्यों कौरवों के जीवन की जड़ें कटती जायंगी और जैसे दीमक से खाया गया वृक्ष सुन्दर दीखने पर भी एकाएक भूमि पर गिर पड़ता है, वैसे ही एक दिन सारा कौरव-कुल भी सो जायगा।"

सहदेव बोला, "महाराज श्रीकृष्ण ! मुझे दृढ़ विश्वास है कि आप जो कुछ देख सकते हैं उसका जरा-सा भी अंश दुर्योधन को दिखाई नहीं दे सकता। यह आश्चर्य की बात नहीं है ?"

"अवश्य है," श्रीकृष्ण ने कहा, "सहदेव ! तुम्हें पता नहीं है। द्यूत सभा में जब महाराज और शकुनि पासे फेंक रहे थे, तब विकर्ण ने उन पासों की बोली सुनी थी, यह याद है ? विकर्ण ने वह बोली सुनी और सारी कौरव-सभा को सुनाई; परन्तु दुर्योधन ने उस समय कान बन्द कर रक्खे थे और इस समय भी बन्द हैं। संसार के सब मदोन्मत राजाओं का यह लक्षण होता है कि वे आंखें रहते भी नहीं देखते और कान रहते भी नहीं सुनते ! सहदेव ! उन मन्दोमत राजाओं के आस-पास ऐसा घेरा बन जाता है कि उनकी आँखों को सत्य वस्तु दीखती ही नहीं, उनके कानों के साथ उनकी प्रिय बातें ही टकराती हैं। आगे चलकर ये राजा अपने आंख-कान गँवा बैठते हैं और बड़े वेग से काल के मुख में समाते जाते हैं।"

"तो आपका आशय यही है न," द्रौपदी से रहा न गया, "कि काल स्वयं ही कौरवों का विनाश करेगा। यह सोचकर पाण्डव बैठे रहें और विनाश भोगते रहें ?"

"बिल्कुल नहीं", श्रीकृष्ण चौंककर बोले, "वह काल तो तुम्हारे निमन्त्रण से ही आयगा। वह तुम्हारे हाथ-पैरों और तुम्हारी बुद्धि का उपयोग करेगा। तुम्हारी तपश्चर्या उसका आमन्त्रण बनेगी। मुझे तुम्हारे वनवास में ईश्वरीय संकेत दीखता है। अर्जुन ! तैयार हो जाओ। तुम इस वन में पड़े-पड़े दिन बिताने के लिए उत्पन्न नहीं हुए हो। तुमसे और मुझसे भी जगत् के ऋषि-मुनियों को अनेक आशाएं हैं। यह समय है उन आशाओं को पूर्ण करने की तैयारी करने का। आज सारे भारतवर्ष में किसी क्रांति के डंके बज रहे हैं। इस क्रांति के लिए तुम्हारे तैयार होने की आवश्यकता है। हिमालय के प्रदेश में जाओ और भगवान् पशुपति से विद्या प्राप्त करो। उस विद्या के बल से दुष्ट राजाओं को कुचलने का तुम्हें सौभाग्य प्राप्त होगा। द्रौपदी ! तुम किसीको निराश होने की आवश्यकता नहीं। यह निश्चय जानो कि यह वनवास तुम सब के लिए आशीर्वाद-रूप ही सिद्ध होगा।"

"श्रीकृष्ण ! आज आपसे मिलकर द्रौपदी के मन का भार बहुत हल्का हो गया है। अधिक क्या कहूं ? मैं इन सबको वन में लाया हूं, इसका मुझे जो दुःख है, आप समझ सकते हैं। वनवास के अन्त में क्या होगा, यह ईश्वर ही जाने !"

द्रौपदी ने तेज आवाज में कहा, "वनवास के अन्त में दूसरा वनवास और वनवास के अन्त में मृत्यु !"

"बहन !" श्रीकृष्ण अधीर हो उठे, "इस प्रकार बोलकर महाराज के व्यथित हृदय को अधिक वेदना न पहुंचाओ। इन वनवास के अन्त में सब मंगल होगा। अच्छा, अब मुझे विदा दो।"

द्रौपदी बोली, "श्रीकृष्ण ! आप जाना चाहते हैं तो खुशी से जाओ; परन्तु इस चोटी को मत भूलना। इस संसार में मेरा और कोई भाई नहीं है।"

"बहन ! तुम भूल रही हो। तुम मेरी बहन हो, यह बात तो है ही; परन्तु आर्यावर्त की किसी भी स्त्री की चोटी खींची जाय और मैं देखता रहूं तो तुम देवकी के पेट से पत्थर जन्मा समझना। बहन! मुझे इसका विश्वास है कि तुम्हारी एक चोटी खींचने के बदले में अन्य अनेक अत्याचारियों की चोटियाँ खींची जायंगी। तुम शांत रहो और मुझे विदा दो।"

"भैया !" द्रौपदी ने कहा, "प्रसन्नता से जाओ।"

युधिष्ठिर बोले, "श्रीकृष्ण! हमारी सुध लेने फिर शीघ्र ही आना।"

"सखे श्रीकृष्ण !" अर्जुन ने कहा, "मैं क्या कहूं, यह मुझे सूझ नहीं पड़ रहा है। अभिमन्यु का ध्यान रखना।"

"महाराज श्रीकृष्ण ! बड़े भाई कहते हैं, इसलिए मानना पड़ता है, अन्यथा मैं ऐसे वनवास को जरा भी न मानता। मैं तो एक वार में ही दो टुकड़े करने की बात जानता हूं।" भीमसेन बोला।

"श्रीकृष्ण !" नकुल ने कहा, "आपके आने से सबको और विशेष कर देवी द्रौपदी को शान्ति मिल गई।"

"और", सहदेव ने कहा, "हम हताश हो गये थे, सो हममें नया बल आ गया।"

"अच्छा, तो अब नमस्कार !" कहकर श्रीकृष्ण रथ में बैठे और द्वारका की ओर चल दिये।

५/ सन्धि की बातें

"महाराज युधिष्ठिर !" श्रीकृष्ण बोले, "मुझे यह उचित जान पड़ रहा है कि मुझको हस्तिनापुर जाकर सन्धि के लिए एक अन्तिम प्रयत्न कर देखना चाहिए।"

भीमसेन तुरन्त बोल उठा, "अब आपके हस्तिनापुर जाने की क्या बात हो सकती है ?"

"क्यों नहीं ?"

"आज जब युद्ध के नगाड़े बज रहे हैं और तलवारें म्यान से बाहर झाँक रही हैं तब सन्धि की बातें कौन सुनेगा ?"

"तुम सुनोगे ?"

द्रौपदी बोली, "मेरे तो सुन-सुनकर कान पक गए।"

नकुल ने कहा, "हमारे सुनने पर भी जबतक दुर्योधन न सुने तबतक क्या हो सकता है ?"

"और," सहदेव ने कहा, "हम चाहे कितने ही शुद्ध हृदय से बात करें, दुर्योधन उनका दुरुपयोग ही करेगा।"

"स्नेह से पिलाया हुआ दूध भी सर्प के मुंह में विष हो जाता है।" द्रौपदी बोली।

"देवी !" युधिष्ठिर ने शान्तिपूर्वक कहा, "फिर भी यदि श्रीकृष्ण कहते हैं तो एक और प्रयत्न करने में कोई हानि नहीं है।"

भीम गरज उठा, "हानि है। कौरव अपनी तैयारी किये जा रहे हैं और हम सन्धि की आशा में ही बैठे हुए हैं।"

श्रीकृष्ण ने समझाते हुए कहा, "भीमसेन ! कौरवों को दूसरों के बल पर लड़ना है, इसलिए उन्हें तो तैयारी करनी ही होगी ; परन्तु वे चाहे कितनी तैयारी करें फिर भी वह अधूरी ही होगी।"

"हमें भी तो दूसरों से सहायता लेनी है।" नकुल बोला।

"हमें सहायता लेनी है !" अर्जुन ने सहायता शब्द पर बल देते हुए कहा।

"कारण," श्रीकृष्ण बोले, "तुम दूसरों के बल पर निर्भर नहीं हो। अर्जुन को क्या तैयारी करनी है ! दुर्योधन कहे तो इसी क्षण अर्जुन गांडीव चढ़ा सकता है। इसीलिए मैं कहता हुं कि यदि संधि का प्रयत्न निष्फल गया तो भी तुम्हें कुछ खोना नहीं पड़ेगा। खोना यदि है तो कौरवों को ही।"

"परन्तु फिर भी," भीमसेन ने कुछ हिचकिचाहट से कहा, "हम बार-बार जो संधि की बात कर रहे हैं, इससे दुर्योधन हमें कायर समझता है।"

"शकुनि भी हमारा उपहास करता है।" द्रौपदी बोली।

"शकुनि का भीमसेन को कायर समझना ही उचित है। शकुनि जैसे पराक्रमी की दृष्टि में भीम को कायर ही सिद्ध होना चाहिए।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"तो फिर श्रीकृष्ण एक बार हस्तिनापुर हो आवें।" अर्जुन ने राय दी।

"मुझे तो यह बिलकुल व्यर्थ मालूम होता है।" भीम ने कहा, "वहाँ कोई श्रीकृष्ण का कहना सुननेवाला नहीं है, उलटे वे लोग श्रीकृष्ण की निन्दा करेंगे।"

"फिर भी एकबार श्रीकृष्ण को हो आना चाहिए।" अर्जुन बोला, "अभी तक समस्त कुरुकुल के सम्मुख हमारी वास्तविक स्थिति प्रकट नहीं हो सकी। महाराज श्रीकृष्ण हस्तिनापुर की सभा में जाकर इसकी घोषणा करेंगे और यह निश्चय कर आयंगे कि कौरव संधि या मृत्यु दोनों में से क्या चाहते हैं।"

"इतना ही नहीं," श्रीकृष्ण ने कहा, "मैं सारे संसार की सभा में पांडवों के अधिकार की घोषणा करूँगा और कौरवों को नग्न रूप में सबके सामने पेश करूँगा। भीमसेन! तुम यह न समझो कि मैं हस्तिनापुर जाने की बात केवल तुम लोगों के लिए कर रहा हूं। कौरवों-पाँडवों का यह झगड़ा मुझे सारे जगत का झगड़ा मालूम हो रहा है। हस्तिनापुर में जाकर यदि मैं कौरवों-पांडवों में सन्धि करा सका तो सारे संसार में जो अशान्ति और वैर-द्वेष फैला हुआ है, उसका भी निवारण हो सकता है। इसीलिए मैं हस्तिनापुर जाने का आग्रह कर रहा हूं। तुम्हारा प्रश्न आज एक प्रकार से विश्व

का प्रश्न बन गया है।"

"तब आप अवश्य जाइये।" युधिष्ठिर बोले।

"परन्तु कहीं दुर्योधन की बातों में न आजाइएगा।" द्रौपदी ने कहा।

"दुःशासन को स्पष्ट बता दीजिएगा कि भीम की गदा उसके रुधिर की प्यासी है।" भीमसेन बोला।

"मैं तो यह खोज करने जा रहा हूं कि रुधिर के प्यासों की प्यास रुधिर के बिना कैसे शान्त हो सकती है। और बहन! तुम ऐसी शंका क्यों कर रही हो कि कौरव मुझे फुसला लेंगे? पाँडवों का अधिकार दीपक की तरह स्पष्ट है। मैं सन्धि चाहता हूं। सन्धि के लिए मैं भरसक प्रयत्न करूँगा; परन्तु तुम यह विश्वास रखना कि वह संधि ऐसी होगी, जो तुम्हें शोभा दे। ऐसा न समझना कि पांडवों के लिए सर्वदा को दासता का लेख लिखाऊँगा।" श्रीकृष्ण ने अपनी बात कही।

"आप पर हमें पूर्ण विश्वास है।" अर्जुन बोला।

"आपके हाथों में हम निर्भर हैं।" नकुल ने कहा।

"मैं त्रस्त होकर बोल रही थी, परन्तु आप पर मेरा विश्वास तिल-मात्र भी कम नहीं है।" द्रौपदी बोली।

"आप हमारे केवट हैं। आप जो कुछ कर आयंगे, वह हमें स्वीकार होगा।" युधिष्ठिर ने अपना विश्वास व्यक्त किया।

"तो फिर मैं जा रहा हूं। अर्जुन! मैं सोचता हूं, कौरव मानेंगे नहीं। यह मैं भली-भांति जानता हूं कि वे अपने अभिमान में चूर हैं। उन्हें विश्वास है कि युद्ध होगा तो वे पांडवों को पीस डालेंगे। तुम्हारी छिपी शक्ति का उन्हें ज्ञान नहीं है। फिर भी मैं उन्हें चेतावनी दूंगा। अत्यन्त विनय से परन्तु दृढ़ता से मैं तुम्हारी माँग उपस्थित करूँगा और प्रयत्न करूँगा कि जिससे पांडव और कौरव मिल-जुल कर एक दूसरे के साथ रह सकें। परन्तु परिणाम ईश्वर के हाथ है। फिर भी एक

बात स्पष्ट है। आज जो अनेक राजा यह समझ रहे हैं कि पाँडवों के दुराग्रह के कारण संधि नहीं हो रही है, सो इससे उनकी आँखें खुल जायंगी और उनके हृदय में कौरवों के लिए जो स्थान बना होगा, वह रिक्त हो जाएगा। अच्छा, अब जाता हूं।"

"बहुत अच्छा, जाइये।"

६ / सन्धि या युद्ध ?

"महाराज धृतराष्ट्र !" कौरव-सभा की असाधारण शाँति को भंग करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा, "मैं पांडवों की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर आया हूं। मेरी साग्रह प्रार्थना है कि आप संधि स्वीकार करके कौरवों और पाडवों का हित-साधन करिये। महाराज ! आप सारे कुरु-कुल के पूज्य हैं। महाराज पांडु के जाने के पश्चात् पांडवों के हित का भार भी आपने संभाला है। आप यह समझते हैं कि महाराज शान्तनु के इस सिंहासन पर पांडवों का अधिकार है, इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। जबतक आपके पार्श्व में पितामह और द्रोण बैठे हैं तबतक हम सब यही मानते हैं कि महाराज शान्तनु का पुण्य समाप्त नहीं हुआ। आप विचार करके पांडवों के अधिकार को स्वीकार करिये, जिससे केवल कुरु-कुल का ही नहीं, समस्त मानव-समाज का कल्याण हो।"

इतना कह कर श्रीकृष्ण अपने आसन पर बैठ गये तो पितामह बोलने के लिए खड़े हुए। उन्होंने कहा, "धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्ण जो कह रहे हैं, वह यथार्थ है। यदि पाँडवों के साथ दुर्योधन सन्धि करेगा तो भीम और अर्जुन दुर्योधन की कीर्ति को सारे जगत् में फैलायंगे और जगत् तुम्हारे चरणों में झुकेगा। बेटा दुर्योधन, तू समझ। आज तक संधि की बड़ी-बड़ी बातें हुईं और खत्म हो गईं। आज स्वयं श्रीकृष्ण आये हैं। ये आज

संसार के अद्वितीय युग-पुरुष हैं ! हम अपनी आँखों से जिन्हें नहीं देख सकते, उन छोटे-बड़े काल के समस्त वलों को ये देख सकते हैं और उनके परिणाम इनके हृदय में चित्रित हो जाते हैं। जो मनुष्य अपनी छोटी-सी बुद्धि की गणना को एक ओर रखकर इस महापुरुष की इच्छा के अधीन होगा, उसका जीवन धन्य हो जायेगा। बेटा ! ये श्रीकृष्ण अपने हाथ में जगत् के लिए शान्ति लेकर आय हैं, इसे तू समझ और उस शान्ति का स्वागत कर। यह न समझना कि मेरे जैसे वृद्ध के कथन में कोई सार नहीं है।"

भीष्म के बैठने पर धृतराष्ट्र ने अपना मुख दुर्योधन की ओर घुमाकर कहा, "बेटा दुर्योधन ! श्रीकृष्ण और पितामह को उत्तर दो। ये दोनों हमारे कल्याण की बात कर रहे हैं। मेरे लिए तो तुम और पांडव सब एक समान हो। भाई पांडु चले गए और यह भार मुझपर डाल गए।"

धृतराष्ट्र ने ज्योंही अपनी बात समाप्त की कि दुर्योधन फुफकारता हुआ उठा, "महाराज ! मैं बहुत पहले ही विचार कर चुका हूं और उत्तर भी दे चुका हूं। मेरे जैसा मनुष्य बार-बार विचार करना और बार-बार उत्तर देना नहीं जानता। यदि मैं इस प्रकार करने बैठूं तो हस्तिनापुर का राज्य एक दिन भी न चले। श्रीकृष्ण पांडवों के सम्बन्धी और अर्जुन के मित्र हैं, इसीलिए आये हैं। किसी को यह मानने की आवश्यकता नहीं कि श्रीकृष्ण युग-पुरुष हैं और इन्हें जगत् की शान्ति की चिंता है। भीष्म पितामह के समान वृद्ध जन भले हो ऐसा समझें। ये यदि ऐसा न समझें तो इनका वृद्धत्व इनके लिए भार-स्वरूप हो जाय। इस सभा में बैठे हुए युवकों से पूछें तो आपको पता लगेगा कि भीष्म, द्रोण, विकर्ण आदि पागल हैं और उनके कथनानुसार चलने में बड़ा खतरा है। श्रीकृष्ण ! तुमने महाराज को अच्छा पाठ पढ़ाया; परन्तु मैंने

अभी अपनी बुद्धि बेच नहीं दी है। सिंहासन पर पांडवों का अधिकार सिद्ध करने के लिए कुरुक्षेत्र के मैदान में रक्त के लेख लिखने पढ़ेंगे। हाँ, यह दूसरी बात है कि तुम हमसे प्रार्थना करो तो हम कुछ दे दें। परन्तु श्रीकृष्ण ! तुमने विदुर चाचा के पास ठहरकर काम कठिन कर दिया। तुम्हारी ये मीठी-मीठी बातें मुझे बहका नहीं सकतीं। अपनी सन्धि और शान्ति का प्रस्ताव जिस प्रकार लाये हो, उसी प्रकार वापस ले जाओ। युधिष्ठिर से कहना कि शीघ्र-से-शीघ्र युद्ध-भूमि में पहुंच जाय। अब तो कुरुक्षेत्र जो निर्णय करेगा, वही दुर्योधन का निर्णय होगा।"

दुर्योधन के इन वचनों पर कर्ण और शकुनि ने हर्ष-ध्वनि की। श्रीकृष्ण ने सारी सभा की ओर दृष्टि डाली और खड़े होकर बोले, "दुर्योधन ! तुमने अपने हृदय की बात इतने स्पष्ट रूप से मुझे बता दी, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। परन्तु वैसे मुझे बड़ा खेद हो रहा है। मैं कोई महापुरुष नहीं। तुम सबकी तरह मैं भी एक साधारण मनुष्य हूं। परन्तु मुझे ऐसा दीख रहा है कि मेरे सन्धि-प्रस्ताव का तिरस्कार करके और पांडवों को युद्ध का आमन्त्रण देकर तुम सब बहुत बड़ी भूल कर रहे हो। दुर्योधन ! सच कहता हूं, यदि तुम पांडवों के साथ सन्धि कर लोगे तो तुम्हें मीठा फल मिलेगा। पांडव आजतक के सारे दुःख भूल जायंगे और तुम्हारा यश संसार में फैला देंगे।

"पांडवों ने अबतक बहुत सहा है। आज वे अपने पिता स्वरूप धृतराष्ट्र से नम्रतापूर्वक अपना अधिकार मांग रहे हैं। आजतक तुमने अकेले हाथों राज्य किया है, इसलिए उसे छोड़ते हुए तुम्हारा मन नहीं कर रहा हैं। यह स्वाभाविक है। परन्तु दुर्योधन ! दूसरों के उचित अधिकार छीनकर कोई समृद्ध नहीं हुआ और न हो सकता है। दुर्योधन ! पांडवों ने आज-

तक तुम्हारा अधर्म सहा, इससे यदि तुम उन्हें अशक्त समझते हो तो यह तुम्हारी भारी भूल है। यदि पांडव अजातशत्रु युधिष्ठिर की आज्ञा न मानते होते तो तुम अपना यह राज्य कभी का गँवा चुके होते। यह समझ रखना कि यदि तुम समस्त भारत की सेना को अपने पक्ष में कर लो तो भी उसे क्षण-भर में उड़ा देने के लिए भीम और अर्जुन समर्थ हैं।

"दुर्योधन ! क्षण-भर के लिए यदि यह मान लिया जाय कि पांडव निर्बल हैं और तुम्हें हरा नहीं सकते; क्षण-भर के लिए यह भी मान लिया जाय कि कुरुक्षेत्र के युद्ध में पांडव हार गये और दुर्योधन की जीत का डंका बज गया, तब भी धृतराष्ट्र-पुत्र ! तुम उस डंके को झूठा समझना। जगत् की शक्तियां तुम्हारा यह अधर्म सहन नहीं कर सकेंगी। स्वयं पांडव न सही, जगत के किसी भी कोने से अन्य कोई अवश्य जागेगा और तुम्हारे हाथों से यह साम्राज्य छीन लेगा। संसार का यह सनातन नियम है।

"महाराज ! आपका पुत्र दुर्योधन, सारे कुरुवंश को वेग से मृत्यु की ओर घसीटे जा रहा है। उसे रोकिये और वह न माने तो उसे बंधन में रखिये। आज इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। इसने सारासार का ज्ञान खो दिया है। समस्त भारत के ब्राह्मण और ऋषि-मुनि आज एक जबर्दस्त संहार के चिह्न देख रहे हैं। इस संहार को रोकना अभी तक आप के हाथ में है। ईश्वर आपको इस संहार को रोकने की सन्मति दे।"

श्रीकृष्ण जब इस प्रकार बोल कर बैठ गए तब सारी सभा में एक प्रकार का शोर शुरू हो गया। एक ओर दुर्योधन और उसकी चांडाल चौकड़ी आपस में फुसफुसाने लगी, दूसरी ओर हस्तिनापुर का महाजन-मंडल इस विचार में पड़ गया कि दुर्योधन इस संधि को किस प्रकार स्वीकार करेगा। एक ओर

दुर्योधन के क्षत्रिय मित्र मूछों पर ताव देते हुए श्रीकृष्ण का उप-

हास करने लगे, दूसरी ओर भीष्म, द्रोण और विकर्ण दुर्योधन को बन्दी करने की मंत्रणा करने लगे। ब्राह्मण और ऋषि-मुनि इस चिन्ता से दुःखी होने लगे कि श्रीकृष्ण का संधि-प्रयत्न निष्फल जायगा।

इसी समय सात्यकि श्रीकृष्ण के सिंहासन के समीप आया और उनके कान में कुछ कहने लगा। सारी सभा का ध्यान सात्यकि और श्रीकृष्ण की ओर आकर्षित हो गया। श्रीकृष्ण मधुर मुस्कान के साथ बोले, "महाराज धृतराष्ट्र! सात्यकि मुझे शुभ संवाद दे रहे हैं। आपका पुत्र और आपका साला शकुनि मुझे बन्दी करने का विचार कर रहे हैं, इससे बेचारा सात्यकि चिंतित और अधीर हो रहा है। परन्तु सात्यकि को यह मालूम नहीं है कि श्रीकृष्ण को बन्दी करना उतना सरल नहीं है, जितना कि दुर्योधन समझता है। दुर्योधन! तुम किसे बन्दी करोगे? तुम श्रीकृष्ण को बन्दी कर सकते हो, भीम को कर सकते हो, अर्जुन को कर सकते हो, कदाचित् पांडवों के लाख-दो लाख मित्रों को भी बन्दी कर सकते हो, परन्तु सारी जनता का जो असंतोष आज तुम्हारे सामने खड़ा हुआ है, उसे तुम बन्दी नहीं कर सकते।

"तुम मुझे बन्दी क्यों करते हो? तुम चाहो तो मेरी हत्या भी कर सकते हो, पांडवों का भी वध करा सकते हो; परन्तु इससे यह न समझना कि हस्तिापुर का सारा राज्य तुम्हारे हाथ में रह जायगा, कारण कि तुम्हारे राज्य के पाये अन्दर से खोखले हो गए हैं। तुम सोचते हो कि तुम्हारा राज्य इन बैठे हुए क्षत्रियों की तलवारों की नोक पर निर्भर है; परन्तु ऐसा सोचने वाला मूर्ख है। राज्य तो जनता के हृदय पर निर्भर है। तुम्हारा यह जनसमूह जिह्वा से चाहे न बोले, परन्तु उसके हृदय से तुम्हारा शासन उठ गया है और जिस राजा का राज्य जनता के हृदय से उठ गया, वह राज्य शस्त्रास्त्रों के सहारे कभी

नहीं टिक सकता। ऐसे राज्यों को तोड़ने के लिए एक जरा-सा धक्का ही पर्याप्त हो जाता है।

दुर्योधन! आज मैं तुम्हारे यहाँ वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण के रूप में नहीं आया हूं; बल्कि तुम्हारे अधर्म के विरुद्ध जो मूक विद्रोह सारे भारतवर्ष में सुलग रहा है, उस विद्रोह को व्यक्त करने वाले एक व्यक्ति के रूप में आया हूं। मुझे वन्दी करोगे तव भी तुम उस विद्रोह के विराट स्वरूप का क्या विगाड़ लोगे? मुझे तो दुर्योधन की मूर्खता पर हँसी आ रही है। बेचारा दुर्योधन समझता नहीं कि अपने राज्य को कायम रखने के लिए जो-जो उपाय वह काम में ला रहा है, वे सारे उपाय राज्य के पाये में उल्टे ही चोट मार रहे हैं और पांडवों के प्रति लोगों का पक्षपात उत्पन्न कर रहे हैं। महाराज धृतराष्ट्र! अब भी आप इधर ध्यान दीजिए। अभी भी संभलने का अवसर है। मैं पांडवों को यह कह आया हूं कि यदि कौरव तुम लोगों को केवल पाँच ग्राम भी दे दें तो उसमें भी तुम्हें सन्तोष मानना होगा।"

इतना कहकर श्रीकृष्ण बैठ गए। सारी सभा क्षण-भर के लिए विचार में डूब गई और सब लोग एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। इतने में भीष्म उठे और बोले, "बेटा दुर्योधन! श्रीकृष्ण ठीक कह रहे हैं। श्रीकृष्ण को वन्दी करने का विचार ही तुझे कैसे आया? जबतक धृतराष्ट्र इस दुष्ट शकुनि को हस्तिनापुर से वाहर नहीं निकालेंगे तवतक हमारा कल्याण नहीं। दुर्योधन! मान जा। पाँच ग्राम दे देने से तुझे क्या कमी हो जायगी? मान जा और सबका आशीर्वाद प्राप्त कर"

भीष्म को उत्तर देता हुआ दुर्योधन बोला—"पितामह! अब मैं छोटा नहीं हूं, मैं सव समझता हूं। मैं मामा शकुनि की इच्छा पर ही चलता हूं, ऐसा आप न समझें। श्रीकृष्ण पांडवों को पांच ही ग्राम देने के लिए कह रहे हैं; परन्तु आधा राज्य या पाँच ग्राम, कुछ भी उन्हें देने को मैं तैयार नहीं

हूं। आप तो पाँच ग्राम की बात कह रहे हैं, परन्तु मैं तो उन्हें सुई की नोक के बराबर भी भूमि देने को तैयार नहीं हूँ। मुझे यह बार-बार की झक-झक पसन्द नहीं है। पाँच ग्राम ही क्यों, पाँडव सारे हस्तिनापुर का और साथ-साथ त्रिलोक का राज्य भी लें, परन्तु वह कुरुक्षेत्र के मैदान में। हस्तिनापुर के सभा गृह में नहीं। श्रीकृष्ण ! तुम जाओ। तुम्हें अपना उत्तर मिल गया है।" इतना कहकर दुर्योधन अपनी मूछों पर बल देता हुआ बैठ गया।

श्रीकृष्ण फिर बोलने के लिए खड़े हुए। उन्होंने कहा, "महाराज धृतराष्ट्र, पितामह, आचार्य, कुरुवंश के पुत्रो और सभाजनों ! मैं पाण्डवों की ओर से संधि संदेश लेकर आया था और आपकी ओर से युद्ध सन्देश लेकर जा रहा हूँ। आपकी इस लड़ाई का कुन्ती के पुत्र स्वागत करेंगे, इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं। जब मैं आपके पास आ रहा था तभी पाण्डवों ने मुझे कहा था कि आप पानी को क्यों व्यर्थ मथ रहे हैं ? परन्तु मेरे जैसों को इस प्रकार का पानी मथने में भी शान्ति मिलती है। सन्धि का अन्तिम-से-अन्तिम प्रयत्न मैंने कर लिया, इससे मेरा हृदय हल्का हो गया है। इसके पश्चात् अब क्या होगा, यह ईश्वर के हाथ है। मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तुम सब वेग-पूर्वक विनाश की ओर दौड़े जा रहे हो, इसी से मेरी बात तुम्हारे गले नहीं उतरती। काल की यही इच्छा है। दुर्योधन अब मैं जा रहा हूँ। तुम्हें यह ज्ञात है कि इस युद्ध में मैं हाथ में शस्त्र तक नहीं लूंगा। परन्तु मेरे वचन तुम्हें युद्ध के समय सत्य मालूम होंगे और आज जो बात समझ में नहीं आ रही है, वह कल युद्ध-भूमि में समझ आयेगी। ईश्वर जगत का कल्याण करे।"

इतना कहकर श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र से विदा लेकर चलने लगे। धृतराष्ट्र ने सिंहासन पर से खड़े होते हुए कहा, "श्रीकृष्ण !

तुम्हारी बात बिल्कुल सत्य है; परन्तु दुर्योधन नहीं मानता, इस से विवश हूं। तुम्हारे आशीर्वाद से सब कुशल मंगल ही होगा।"

श्रीकृष्ण सभा से निकलकर रथ में बैठे और उनके सारथी दारुक ने रथ हाँक दिया।

७ / अर्जुन का समाधान

"पांचाली !" छावनी के तम्बू के बाहर चक्कर लगाते हुए अर्जुन बोला, "मुझे आज नया जीवन मिला है। गत रात का अर्जुन और इस समय तुम्हारे साथ बातें करने वाला अर्जुन दोनों एक दीखते हुए भी भिन्न हैं, यह निश्चय जानना।"

"प्रिय अर्जुन !" द्रौपदी बोली, "ऐसी क्या बात हो गई कि शरीर से पसीना बह निकला, आँखों तले अँधेरा छा गया, शरीर जलने लगा और गांडीव हाथ से छूटने लगा? जिन लोगों को युद्ध का संचालन करने पर भी ऐसा हो जाय, क्या उनकी वीरों में गणना हो सकती है?"

"पांचाली !" अर्जुन हँसता हुआ बोला, "इस प्रकार तो मैं बिलकुल कापुरुष हूं! अवश्य। परन्तु देवी, यह स्मरण रखना की युद्ध का संचालन करने वाले सभी शूरवीर नहीं होते। अनेक शूरवीर कहलाने वालों की टाँगें उनकी पोशाक के अन्दर काँप रही होती हैं। शंख भेरी आदि के नाद में मस्त होकर बेचारे लड़ते रहते हैं, इससे जगत् की आँखें उन्हें ठीक रूप में देख नहीं सकतीं।। द्रौपदी वीर समझो या कापुरुष; परन्तु मैं मूढ़ अवश्य बन गया हूँ।"

"श्रीकृष्ण न होते तो भीष्म पितामह एक क्षण में तुम्हारा सिर उतार लेते और सारे युद्ध का अन्त हो जाता।" द्रौपदी ने कहा।

"अवश्य !" अर्जुन बोला, "परन्तु ईश्वर की इच्छा कुछ और होगी। मुझे स्वयं ज्ञात नहीं कि जब मैं द्वारका गया था तब

शस्त्र-हीन अकेले श्रीकृष्ण और उनकी सम्पूर्ण सेना, इन दोनों में से मैंने अकेले श्रीकृष्ण को क्यों पसन्द किया। मैं स्वयं नहीं जानता कि ईश्वर के किस संकेत का अनुसरण करके मैंने श्रीकृष्ण को अपना सारथी बनाया। देवी ! मैं समझता हूँ कि इन सबके पीछे परमेश्वर का कोई दैवी संकेत है। संकेत न हो तब भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुझे आज नया जन्म मिला है।"

"इस प्रकार तो तुम अनेक नये जन्म ले चुके हो," द्रौपदी बोली, "तुम्हारे एक जीवन में पापी दुर्योधन ने तुम्हें अनेक जीवन जिलाये हैं।"

"यह बात दूसरी है।" अर्जुन ने कहा, "यों तो मनुष्य के जीवन में धूप-छाँह आती ही रहती है, परन्तु आज के प्रसंग ने मेरे जीवन में बड़ा परिवर्तन ला दिया है। बारह घन्टे बीत चुके हैं, परन्तु मेरे हृदय में अब गूँज हो रही है, जैसे हिमालय के ऊँचे-ऊँचे शिखर पर से परमात्मा की भेदक ध्वनि सुनाई दे रही हो और कुरुक्षेत्र के मैदान से मुझे कहीं-का-कहीं ले जा रही हो।"

द्रौपदी ने पूछा, "परन्तु अर्जुन !" "यह मेरी समझ में नहीं आता। श्रीकृष्ण सब बातों में तो निपुण हैं ही, धर्म में भी निपुण हैं। मुझे यह ज्ञात नहीं हुआ कि धर्म-शास्त्र का अध्ययन उन्होंने कहाँ किया है।"

"यही विशेष बात है।" "धर्म-शास्त्र की पोथियां पढ़ने वाले उन पोथियों के अक्षरों में ही फँस जाते हैं। इन शास्त्रों के जंगल इतने सघन होते हैं कि एक बार भूलने पर रास्ते का पता लगना ही कठिन है। श्रीकृष्ण जैसे पुरुष शास्त्रों को नहीं पढ़ते, परन्तु स्वयं शास्त्र ही उनके जीवन से उद्भव होते हैं।"

"श्रीकृष्ण ने तुम्हें यह समझाया कि यह युद्ध अवश्य करना चाहिए ?"

"यों नहीं। उन्होंने मुझसे कहा कि तू इस समय युद्ध का ही अधिकारी है, इसलिए युद्ध से भाग जाने की और भीख माँग-कर रोटी खाने की बातें कर रहा है, वे सब मिथ्या हैं।"

"अच्छा उन्होंने ऐसा कहा?" द्रौपदी प्रसन्न होते हुए बोली, "ठीक कहा मेरे भैया श्रीकृष्ण ने। महाराज को भी यह बात सुनाओ, जिससे वे जो बार-बार सन्यास लेने की बातें करते हैं, वे बन्द हों।"

"द्रौपदी ! श्रीकृष्ण ने युद्ध करने के लिए कहा, परन्तु जिस प्रकार तुम कहती हो, उस प्रकार नहीं। तुम तो कौरवों से बदला लेने के लिए युद्ध का आग्रह करती हो; परन्तु श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्म की दृष्टि से युद्ध करने को मुझे कहा है।"

"यह निष्काम-विष्काम मेरी समझ में नहीं आता।" मैं तो यह जानती हूँ कि कौरवों को तुम्हें मारना चाहिए।

"यही तो बड़ा भेद है न ? एक क्रिया को यदि एक मनुष्य राग से करता है तो वह उसके लिए बन्धन होता है; परन्तु उसी क्रिया को दूसरा मनुष्य रागद्वेष के बिना धर्म के रूप में करता है तो वह उसके कल्याण में सहायक होता है।"

"तब श्रीकृष्ण बड़े धर्माचारी हैं, यही न ?"

"द्रौपदी ! तुम भूलती हो ! यों कहो कि श्रीकृष्ण को हमने पहचाना ही नहीं है। देवी ! ब्रज की गोपियों से जाकर पूछो तो वे कहेंगी कि हमारा यह बालकृष्ण बालकों के समान निर्दोष और प्रेम की मूर्ति है। आज भी गोपियाँ जमुना के तट पर उनकी मुरली की ध्वनि सुनती हैं और क्षणभर में गहरे उतरकर जीवन का आनन्द लेती हैं। चाणूर जैसे मल्ल से जाकर पूछो तो वह कहेगा कि श्रीकृष्ण बड़ा मल्ल है। मुझ जैसे से पूछो तो मैं कहूँगा कि खाण्डव-वन दहन करके वहाँ नई बस्ती बसाने में श्रीकृष्ण मेरे अद्वितीय साथी थे। शकुनि और दुर्योधन से पूछो तो वे कहेंगे कि श्रीकृष्ण बड़े राजनीतिज्ञ हैं

और किसी के हाथ में आने वाले नहीं। विदुर से पूछो तो वे कहेंगे कि श्रीकृष्ण साक्षात् अवतार हैं। व्यास भगवान से पूछो तो वे कहेंगे कि श्रीकृष्ण हमारे युग-पुरुष हैं। देवी पांचाली! श्रीकृष्ण इनमें सब कुछ हैं और इससे बहुत अधिक हैं। आज मैंने यह देख लिया है।"

"ऐसा आज तुमने क्या देखा?"

"द्रौपदी! क्या बताऊं? मेरे जीवन की वे अनेक उलझनें जो किसी से नहीं सुलझ सकती थीं, श्रीकृष्ण ने आज एकदम सुलझा दीं। जब हिमालय पर तपस्या करने गया था तब मैं अनेक ऋषि-मुनियों के आश्रमों में रहा हूं। मैंने योग, कर्म, ज्ञान अकर्म और भक्ति की अनेक बातें सुनी हैं। परन्तु आज यह स्पष्ट हो गया कि वे सब बातें मेरे लिए शून्य के समान थीं। कैसी उनकी विशेषता है! पर्वत पर से गिरते हुए गंगा के प्रवाह की तरह स्वच्छ और स्पष्ट उनका उपदेश है! जितनी स्पष्टता से मैं आज पांचाली को देख रहा हूं. उतनी ही स्पष्टता से श्रीकृष्ण ने आज मुझे धर्म का दर्शन कराया। हमारे देश में भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी अपनी-अपनी सीमा बनाकर जो दुरागृह खड़े करते हैं, उनका हल श्रीकृष्ण के पास ही है।"

"श्रीकृष्ण स्वयं सांख्य में विश्वास रखते हैं या योग में? उनके कथनानुसार ज्ञान सत्य है या भक्ति?

"द्रौपदी! क्षमा करना, मुझे तुम्हार प्रश्न पर हँसी आ रही है। श्रीकृष्ण न सांख्य मानते हैं, न योग, न ज्ञान, न भक्ति। वे विश्वास करते हैं केवल परमात्मा में। यदि सांख्य परमात्मा की ओर ले जाता हो तो उसे मानते हैं, नहीं ले जाता हो तो नहीं मानते। योग परमात्मा की ओर ले जाता हो तो उसे मानते हैं, नहीं ले जाता हो तो नहीं मानते। यही बात ज्ञान और भक्ति के लिए है। उन्हें हमारे सांख्य योग के झगड़े से कोई मतलब नहीं, उन्हें परमात्मा से मतलब है। मैं

यह सांख्य है, यह योग, यह कर्म और यह ज्ञान, इस प्रकार बहुत बका करता था, परन्तु श्रीकृष्ण ने मेरा सारा भ्रम दूर कर दिया है।"

"तो तुम्हें श्रीकृष्ण ने अपना नया धर्म सिखाया है ?"

"उनका कोई नया धर्म नहीं है। वे जो करते हैं, वही बोलते हैं और जब बोलते हैं तब आत्मा की गहराई से बोलते हैं। द्रौपदी ! सच कहूं ? उन्होंने मुझे सांख्ययोग आदि के द्वारा मानव-धर्म की झाँकी कराई है। और मेरी आंख से परदा दूर कर दिया है। अतएव मैं श्रीकृष्ण को योगेश्वर कहता हूँ।"

"उनके इस मानव-धर्म की विशेषता बताओगे ?"

"उसकी विशेषता एक ही है।"

"वह क्या ?"

"जहाँ धर्म का पालन करने से परमात्मा की हत्या होती हो, वहाँ धर्म को भी त्याग देना चाहिए। मुझे आज प्रातःकाल ही श्रीकृष्ण ने कहा था कि अर्जुन ! तू सब धर्मों का त्याग करके केवल परमात्मा को ग्रहण कर। इसीका नाम मानव-धर्म है। जो धर्म, प्रत्येक मनुष्य को भाई समझना सिखाने के बदले शत्रु बनाता है, वह धर्म नहीं है। हमारे सांख्य योग वाले, कर्म ज्ञान वाले, ईश्वर निरीश्वरवादी भले ही आपस में लड़ लें, परन्तु धर्म के नाम पर लड़ने वालों की इस प्रकार कभी विजय नहीं हो सकती। दुनिया में अनेक धर्म बने और अनेक बनेंगे। इस भिन्न-भिन्न धर्मों के जाल से छूटकर जो अपने अन्तर की आवाज के प्रति सच्चा रहेगा, वह परमात्मा के मार्ग पर होगा। अन्य सब मकड़ी की तरह अपने बनाए हुए जाल में ही फँसकर रह जायंगे। देवी ! मैं आज धन्य हो गया।"

"फिर अब तो तुम अवश्य लड़ोगे। कहीं फिर तो गांडीव छोड़कर नहीं बैठ जाओगे ?"

"मैं सोचता हूं कि अब फिर मैं ऐसी दीनता नहीं दिखाऊँगा।

देवी ! क्षमा करना, इस दीनता ने इस समय मुझे यह बड़ा लाभ पहुंचाया है। ऐसी दीनता दिखलाने से ही आज मुझे यह सब अनुभव प्राप्त हुआ है। इस दीनता को छिपाए रखा होता तो श्रीकृष्ण के अमर वचन कैसे सुन सकता ? देवी ! मुझे तो ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण ने केवल मुझपर ही यह उपकार नहीं किया है; परन्तु जितने भी अर्जुन इस संसार में हैं और जिन्होंने अपने रथ की बागडोर परमात्मा के हाथ में सौंप दी है, उन सबको लक्ष्य करके कह रहे हों, इस प्रकार श्रीकृष्ण ने मुझे यह सब सुनाया है। पांचाली ! यदि शब्द शरीर धारण कर सकते हों और वे शरीर अमर रह सकते हों तो मेरी यह शुभेच्छा है कि श्रीकृष्ण का यह उपदेश सारे आर्यावर्त्त में अमर रहे और मेरे जैसे अनेक मूढ़ जनों के लिए मार्ग दर्शक बने। 'देवी ! मैं कैसा मूर्ख हूं कि श्रीकृष्ण को आजतक पहचान न सका। और इसका भी क्या विश्वास है कि फिर उन्हें न भूल जाऊँगा। श्रीकृष्ण ! तुममें इतना मनुष्यत्व है कि तुम्हारा देवत्व मन में ठहर ही नहीं सकता।"

"अर्जुन ! मेरे लिए तो सबसे अधिक आनन्द की बात यह है कि मेरे अर्जुन का हाथ गांडीव पकड़ने के लिए अधिक बलवान हो गया। अब श्रीकृष्ण हमें इस युद्ध में विजय दिलवा दें, तो हम निश्चिन्त होकर बैठें। रात बहुत बीत गई है, अब तुम विश्राम करो।"

"बहुत अच्छा।" अर्जुन अपने तम्बू में चला गया और द्रौपदी अपने तम्बू में।

८ / भीष्म की निगाह में

कुरुक्षेत्र का युद्ध समाप्त हुआ और युधिष्ठिर हस्तिनापुर के महाराजा बने। हस्तिनापुर का मुकुट धारण करने के पश्चात्

एक बार युधिष्ठिर भीष्म पितामह के पास गये। पितामह शर-शैया पर पड़े हुए थे। युधिष्ठिर ने निकट जाकर शीश झुकाया और शैया के एक ओर बैठ गए।

"युधिष्ठिर!" भीष्म ने पूछा, "अन्त में तुमने हस्तिनापुर का राज-मुकुट प्राप्त कर लिया न?"

"पितामह!" युधिष्ठिर दुःखी होकर बोले, "रक्त की इतनी नदियां बहाने के पश्चात् मिला हुआ यह मुकुट मुझे कितना प्रिय लग रहा है, यह मेरा हृदय ही जानता है। आप जैसों को इस मुकुट के कारण जब स्वाणों की शैया पर पड़े हुए देखता हूं तब मुझे अपने प्रति तिरस्कार उत्पन्न होता है और अपनी पामरता का भान होता है।"

"बेटा युधिष्ठिर;" युधिष्ठिर ने सान्त्वना के शब्दों में कहा, "इस प्रकार खेद करने की आवश्यकता नहीं। मेरे जैसे वृद्ध को इतनी आयु में भी कौरवों के साथ रह कर यदि तुम्हारे विरुद्ध लड़ना पड़े तो मैं बाण-शैया का ही अधिकारी हूँ। युधिष्ठिर! वैसे जीवन में किस मनुष्य को बाण-शैया पर नहीं सोना पड़ता? मनुष्य-मात्र के हृदय में ईश्वर ने इस प्रकार की कीलें ठोकी हुई हैं। 'क्या करूँ, क्या न करूँ' की उलझन में पड़कर मनुष्य को जो अन्तर्वेदना होती है, वह बाण-शैया नहीं तो और क्या है? यदि बाण-शैया किसी के लिए नहीं है तो एक मूर्ख के लिए और एक ज्ञानी के लिए नहीं है। युधिष्ठिर! मैं सामने एक नये सूर्य को उदय होते देख रहा हूं। पुरानी रात को मैं अपने साथ लेकर सोया हूँ। जब इस अंधकार में से उस सूर्य का प्रसव होता है तब उसकी प्रसव-पीड़ा तो मुझे सहनी ही चाहिए न? परन्तु आने वाले कल की आशा इस पीड़ा को भुला देती है और अभिनव आनन्द की कल्पना कराती है। बेटा! तुम मेरी पीडा का विचार न करो श्रीकृष्ण कह गये हैं कि?"

"हैं ! माता कुन्ती ने उन्हें कुछ दिनों के लिए रोक लिया है।" युधिष्ठिर ने बताया।

"फिर तुम उन्हें अपने साथ क्यों नहीं लाये ?" भीष्म ने दृष्टि घुमाकर कहा, "उनका दर्शन करके मैं अपने जीवन को अधिक धन्य बनाता।"

"पितामह !" युधिष्ठिर बोले, "श्रीकृष्ण के प्रति आपके सद्भाव को मैं जानता हूँ।"

भीष्म तुरन्त बोल उठे, "सद्भाव नहीं, पूज्यभाव—भक्तिभाव कहो। तुम लोग उन्हें पहचानते नहीं। वे युग-पुरुष हैं। किसी और युग में उत्पन्न हुए होते तो लोग उन्हें ईश्वर के अवतार के रूप में पूजते। उनका दर्शन और उनका सत्संग जीवन की अमूल्य वस्तु है।"

"पितामह ! "आप उन्हें वर्षों से युग-पुरुष के रूप में जानते हैं। मेरे वे निकट सम्बन्धी हैं और उनके कारण ही हम इस युद्ध में विजयी हुए हैं। फिर भी युद्ध में उन्होंने जो कुछ किया, उसकी बड़ी टिका हो रही है और मेरा उनपर पूज्यभाव होने पर भी उन टीकाओं का मेरे पास कोई उत्तर नहीं है।"

"युधिष्ठिर ! लोग भूलते हैं। श्रीकृष्ण जैसे महापुरुष की टीका करने वाले लोगों के पास उन्हें मापने का यन्त्र कहाँ है ? हमारे तुम्हारे जैसे वामन-पुरुष उनके विराट स्वरूप को पहचान ही कहां सकते हैं ? ऐसे महापुरुष को पहचानने के लिए स्वयं तपश्चर्या करके पवित्र होना चाहिए और फिर उनके जीवन-कार्यों पर दृष्टि डालनी चाहिए। मेरे कानों में भी यह बात पड़ी है। अनेक लोग उन्हें नीतिज्ञ कहते हैं। मुझसे पूछो तो मैंने इस युद्ध में उनके सारे कार्यों का अध्ययन किया है और इससे मेरा यह विश्वास अधिक दृढ़ हुआ है कि वे युग-पुरुष हैं। तुम धर्मात्मा हो, इससे यह बात तुम्हारी भी समझ में आती होगी। अन्य लोगों को तो उन्हें समझने के लिए अभी अनेक जन्म लेने

पड़ेंगे।"

"पितामह ! आप ठीक कहते हैं। देखिए, जब अर्जुन ने आपको गिराया तब सारी कौरव-सेना को उसमें श्रीकृष्ण का छल दिखाई दे रहा था।"

"बेटा ! जब मैंने अर्जुन पर गहरा वार किया तब अर्जुन भी घबरा गया। श्रीकृष्ण ने युद्ध में शस्त्र हाथ में न लेने की प्रतिज्ञा की थी; परन्तु जब अर्जुन रथ में गिर पड़ा तब वे स्वयं रथ का पहिया लेकर मेरी ओर दौड़े।"

"हाँ, इसी घटना को लेकर लोग उन्हें प्रतिज्ञा तोड़ने वाला अधर्मी कहते हैं।"

"उन लोगों को धर्म-अधर्म की सूक्ष्म तराजू को स्पर्श करने का भी अधिकार नहीं है। युधिष्ठिर ! आज भी जब मैं श्रीकृष्ण के रथ का पहिया लेकर दौड़ने की घटना याद करता हूं तो मुझे हर्ष से रोमांच हो आता है और मेरे जीवन की थकान उतर जाती है। बेटा ! जिन लोगों में ईश्वर-भाव नहीं है, जिन लोगों ने कभी दूसरे को हृदय से अपना नहीं समझा, जिन लोगों ने किसी एक ध्येय के लिए अपने जीवन का उपयोग नहीं किया और जिन लोगों को मानव-हृदय के कोमल भावों का पता नहीं है, उन लोगों को मनमानी कहने दो। परन्तु जिस समय मेरे समान भीष्म सारी पांडव-सेना को तहस-नहस कर रहा हो, जिस समय पांडवों की एक-मात्र आशा अर्जुन अचेत होकर रथ में पड़ा हो, जिस समय क्षण-दो-क्षण में ही सारे युद्ध का निर्णय होने की स्थिति उत्पन्न हो गई हो, उस समय अपने आप्तजनों की ओर से निश्चिन्त रहकर प्रतिज्ञा के अक्षरों को तौलते रहना उचित है, या प्रतिज्ञा भंग का प्रायश्चित सहकर आप्तजन की सहायता के लिए दौड़ना उचित है ? श्रीकृष्ण के चक्र लेकर मेरी ओर दौड़ने में मुझे केवल उनका अर्जुन के लिए शुद्ध प्रेम दिखलाई दिया और जब उनके जैसे महापुरुष प्रेम के वश

होकर दौड़ पड़े तब मैं शस्त्र त्यागकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। युधिष्ठिर ! ऐसे महापुरुषों का ऐसे प्रसंगों पर हम अपनी मति के अनुसार माप करते हैं, यह हमारी भूल है। भक्त-वत्सलता ईश्वरीय गुण है। मुझे तो चक्र लेकर दौड़ने में श्रीकृष्ण की महत्ता प्रतीत हुई थी और तुम जानते हो कि उनकी प्रतिज्ञा भी टूट नहीं सकी थी। तुरन्त ही अर्जुन ने पीछे से आकर उन्हें रोक लिया और उन्होंने फिर से अर्जुन के रथ की बागडोर हाथ में ले ली।"

"पितामह ? आप जो कह रहे हैं, वह उचित है। मेरे अपने विषय में आपको पता होगा कि श्रीकृष्ण ने मुझसे असत्य बोलने को नहीं कहा था। जब द्रोणाचार्य को मारना था तब श्रीकृष्ण ने मेरे सामने दो बातें रखीं। या तो मुझे असत्य बोलकर द्रोण से शस्त्र त्याग करवाना और इस प्रकार विजय का मार्ग खोल कर अपने आप्तजनों के प्राण बचाना अथवा अपने सत्य पर दृढ़ रहकर इस मुकुट और आप्तजनों के जीवन की आशा छोड़ देना। मैंने स्वयं अपनी खुशी से असत्य को और इस मुकुट को पसन्द किया। मुझे वही पसन्द हो गये। इसमें श्रीकृष्ण का जरा भी दोष नहीं था। हाँ, मैं अन्दर से निर्बल था। मेरी निर्बलता छिपी हुई थी, जो इस प्रकार बाहर आ गई। इससे मुझे रोष हो और मैं श्रीकृष्ण को दोष दूँ, तो यह और बात है। परन्तु पितामह ! आपने सुना तो होगा ही। मेरे अर्जुन ने कर्ण को मारा, यह असम्भव-सा लगता है। श्रीकृष्ण ने उस अधर्म को क्यों नहीं रोका, यह मैं नहीं समझ सकता।"

"बेटा, युधिष्ठिर ! धर्म-अधर्म का निर्णय इस प्रकार नहीं हुआ करता। धर्म-अधर्म समाज में सापेक्ष वस्तु है। जिस कर्ण ने जीवन-भर तुम्हें सताया, तुम्हें वनों में भी कष्ट पहुंचाये और सुख न मिलने दिया, उसी कर्ण ने जब केवल रण-भूमि में आकर अर्जुन को धर्म-युद्ध के लिए चुनौती दी तो बड़ा अच्छा किया ?

जिसने सारा जीवन तुम्हारे साथ छल-प्रपंच करने में विताया, वही जीवन-मरण के प्रसंग पर तुम्हें धर्म का उपदेश दे, यह तो निरी धर्म की विडम्बना है। उस जिह्वा पर 'धर्म' शब्द ग्राते ही उसे टूट पड़ना चाहिए। कर्ण को धर्म की बात करने का ग्रधिकार ही नहीं था। हां, यह ग्रौर बात है कि ग्रर्जुन के लिए वह कार्य उचित था या नहीं। भीम ने जब दुर्योधन को गदा मारी तब वहाँ भी यही प्रश्न था। ग्राजन्म ग्रधर्म से तुम्हें सतानेवाले कर्ण ग्रौर दुर्योधन, ग्रपनी मृत्यु के समय तुम्हें धर्म का स्मरण करायें, यह कितनी विचित्र बात है? तुमने, भीम ने, तथा ग्रर्जुन ने जिस प्रकार तुमसे हो सका, उस प्रकार उन्हें मारा—उनके ग्रनेक ग्रधर्मों के सामने तुमने कदाचित् एकाध ग्रधर्म कर लिया तो इसमें लोगों के भड़कने की क्या बात है?"

"लोग तो श्रीकृष्ण को दोष देते हैं।"

"युधिष्ठिर! श्रीकृष्ण जैसे पुरुष स्वयं ज्योति होते हैं। शास्त्र उनके धर्म-ग्रधर्म के प्रमाण नहीं होते; परन्तु उनके जैसे पुरुष का व्यवहार ही धर्म-शास्त्र बन जाता है। ग्रपनी धर्म-ग्रधर्म की तुला से उन्हें तोलने की ग्रपेक्षा उनके जीवन से ग्रपने धर्म-ग्रधर्म सम्बन्धी विचारों की फिर से जाँच करना ग्रधिक उचित है। उनके समान साधु-चरित्र पुरुष किस ईश्वरीय संकेत का ग्रनुसरण करके कौन-सा काम करते हैं, यह समझना भी हमारे लिए कठिन है। देखो, गांधारी जैसी सती श्रीकृष्ण को शाप दे बैठी! गांधारी के समान सती ग्रार्या-वर्त ने नहीं देखी। हम-तुम जैसों को ऐसी स्त्रियों के उदर से जन्म लेने की इच्छा होती है; परन्तु जब उसने दुर्योधन के शव को देखा ग्रौर उसकी मृत्यु की बात सुनी, तब उससे भी श्रीकृष्ण को शाप दिये बिना नहीं रहा गया। उस समय श्रीकृष्ण ने कितने ग्रानन्द से उस शाप का स्वागत किया। ग्रपनी मृत्यु के शाप को हँसते हुए सह लेना ग्रौर शाप देने वाले से यह कहना कि 'तुमने

उचित किया,' यह क्या साधारण मनुष्य का काम है ? युधिष्ठिर ! ऐसे समय तो बड़े-बड़े योगी-मुनि भी अपना भान खो बैठते हैं । श्रीकृष्ण के समान स्थित-प्रज्ञ लोग ही स्थिर रह सकते हैं ।"

"पितामह ! आप जो कह रहे हैं, वह सब मैं मानता हू । परन्तु साधारण मनुष्य तो अपनी बुद्धि के अनुकूल ही इसका उत्तर मानेंगे। आपके दिये हुए उत्तर मेरे समान श्रद्धापूर्ण अन्तःकरण वाले को ही सन्तुष्ट कर सकते हैं।

"सच बात है। जिनके अन्तःकरण वक्र हो गए हैं, उनकी समझ में ये बातें आनी मुश्किल हैं । वे लोग तो ऐसे प्रसंगों को श्रीकृष्ण के दूषण रूप में ही मानेंगे । परन्तु बेटा ! ऐसा हो तो भी क्या बात है ? सोचो कि श्रीकृष्ण ने इस प्रकार की कुछ भूलें की हों, तो भी क्या हुआ ? इससे महापुरुष के रूप में उनका स्थान और भी दीप्त हो उठता है । श्रीकृष्ण चाहे जैसे हैं, फिर भी मनुष्य हैं। उनके हाड़-मांस में मनुष्य का रूधिर बह रहा है । हमारी तरह ही उन्होंने एक स्त्री के उदर से जन्म लिया है। वे चाहे कितने ही उच्च हों, फिर भी जीवन में कभी-कभी मनुष्योचित साधारण-सी भूलें उनसे हो सकती हैं। और फिर भी वे महापुरुष तो हैं ही। मेरे जैसे भक्त को तो उन की ऐसी-ऐसी भूलें ही अधिक आकर्षित करती हैं। इस प्रकार के मानवीय स्खलन से उनकी दिव्यता अधिक सुशोभित होती है और हम मनुष्यों को अधिक आशा प्रदान करती है।"

"पितामह ! आप सत्य कह रहे हैं। जिस प्रकार अंधकार में लोग अनेक प्रकार की झूठी-सच्ची भूतों की कल्पनाएँ कर लेते हैं, उसी प्रकार जिसके विषय में लोग कुछ जानते ही नहीं अथवा जान नहीं सकते, उनके संबंध में वे अनेक कुतर्क किया करते हैं। श्रीकृष्ण के साथ यही बात हुई है। हमारे इतने निकट होने पर भी हम अनेक बार उन्हें साधारण मनुष्य समझ बैठते

हैं, तो फिर अन्य लोगों की तो बात ही क्या है ;"

"बेटा ! संसार के सभी महापुरुषों के बारे में यही हुआ है। वे जबतक जीवित रहते हैं तबतक जगत उन्हें पहचान नहीं सकता और उनके चले जाने के पश्चात् हाथ मलता है। श्रीकृष्ण के साथ भी ऐसा ही होगा। ऐसे पुरुषों से कुछ दूर रहा जाय तो कदाचिद् उन्हें पहचानना सहज हो। हमारे समान साधारण मनुष्यों को ऐसे विचार आने लगते हैं कि 'हमारे पैरों की तरह ही उनके पैर हैं, हमारे समान ही वे खाते-पीते और घूमते-फिरते हैं, फिर वे महापुरुष कैसे ?' और परिणाम-स्वरूप हम उन्हें पहचान नहीं सकते। परन्तु यह तो फिर लम्बी बातें हो गईं।"

"पितामह ! बड़ा अच्छा हुआ। आज आपने मेरा बहुत अज्ञान दूर कर दिया। आप पर मेंने बड़ा श्रम डाला है, इसके लिए क्षमा करेंगे। अब मुझे आज्ञा दीजिए।"

"बेटा युधिष्ठिर ! मेरा श्रम तो उलटे दूर हो गया है। श्रीकृष्ण जैसे पुण्य-पुरुष को स्मरण करके तो जीवन-भर का श्रम दूर हो जाता है। फिर आज जब मैं जीवन के किनारे बैठा हुआ हूं तब उन्हें स्मरण करके धन्य ही हो गया हूं। बेटा ! अभी मेरा शरीरांत होने में थोड़ा समय लगेगा। इस बीच यदि तुम फिर आओ तो श्रीकृष्ण को साथ लेते आना। मेरी ओर से उनसे यह विनती कर देना।"

"जो आज्ञा ! आप अब अपने ऊपर अधिक श्रम न डालें।"

इतना कहकर युधिष्ठिर रथ में बैठे और हस्तिनापुर की ओर चल दिये।

९ / अवतार कृत्य

"पितामह !" शर-शैया के पास बैठे हुए श्रीकृष्ण बोले, "अब यह देखना रहा है कि महाराज युधिष्ठिर अपने धर्म-राज्य का स्थापन किस प्रकार करते हैं।"

"महाराज !" भीष्म ने कहा, "केवल आपको यह देखने की आवश्यकता नहीं। कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन के रथ की बागडोर थामकर बैठे हुए आपको जगत् ने देखा है। इसके बाद के नये युग-निर्माण में भी आप ही पांडवों के पथ-प्रदर्शक होंगे। जगत् के ब्राह्मणों को ऐसी ही आशा है।"

"भीष्म !" भव्य महल को तोड़ डालना सहज है; परन्तु उसकी जगह छोटी-सी झोंपड़ी खड़ी करना सहज नहीं है। हिमालय के सघन वनों को जरा-सी आग से भस्म कर डालना सहज है; परन्तु एक छोटे-से वृक्ष को पानी सींच-कर पनपाना सहज नहीं है। देश के बड़े-बड़े प्रदेशों को एक बारगी उजाड़ देना सहज है; परन्तु एक छोटा-सा टीला नया बसाना सहज नहीं है। पितामह ! सारे मानव-समाज को कुचलकर बैठे हुए साम्राज्यों को उखाड़ डालना सहज है; परन्तु उसके स्थान पर छोटा-सा धर्मराज्य स्थापित करना सहज नहीं है।"

"आज पांडवों को यह कठिनाई दिखलाई दे रही होगी।"

"अवश्य।" श्रीकृष्ण बोले, "उस दिन अभिमानी राजाओं का गर्व चूर्ण करने में गांडीव की टंकार और भीम की गदा दोनों समान थे; आज हजारों सनाथ क्षत्रियों को पालकर बड़ा करने में वह गांडीव और गदा निरर्थक हैं। कौरवों को उनके अन्याय का भान कराने के लिए पांडवों की रक्तवर्ण आंखों की आवश्यकता थी। आज हजारों अनाथ स्त्रियों के आंसू पोंछने के लिए किसी कोमल हाथ की आवश्यकता है।

पांचाली को अपने रोष की तृप्ति के लिए उस दिन अपनी चोटी दुःशासन के रुधिर में भिगोने की आवश्यकता हुई होगी, परन्तु आज ऐसी समाज-व्यवस्था खड़ी करनी होगी कि प्रतिदिन सारे आर्यावर्त की स्त्रियां अपनी चोटियां फूलों से गूंथ सकें। उस दिन आर्यावर्त्त के अनेक राज-महाराजाओं ने अपनी-अपनी क्षत्रिय जनता पाँडवों के चरणों में सौंप दी थी। आज नये राष्ट्र-निर्माण में अनेक राजा-महाराजाओं को अपनी ब्राह्मण-जनता का साथ देना पड़ेगा। पितामह ! धर्म-राज्य की स्थापना के ऐसे अनेक प्रश्न महाराज युधिष्ठिर के सामने प्रतिदिन उपस्थित होने लगे हैं और अजातशत्रु युधिष्ठिर उन्हें किस प्रकार सुलझाते हैं, यह सारा जगत् निर्निमेष दृष्टि से देख रहा है।"

"तब तो युधिष्ठिर को महान् परीक्षा में से निकलना पड़ेगा।" भीष्म युधिष्ठिर की ओर घूमकर बोले।

"निःसन्देह। कौरवों के सामने धर्म-युद्ध की पताका फहराने वाले युधिष्ठिर को, सारे लोक-समूह को दिलाई हुई आशाएँ पूर्ण करनी होंगी। कौरवों को दुष्ट कहने वाले पांडवों को अपनी साधुता साबित करनी पड़ेगी। दुर्योधन को गर्विष्ठ कहने वाले युधिष्ठिर को विजय के क्षणों में अधिक नम्र बनना होगा। धृतराष्ट्र को प्रजा का अभिभावक हित-रक्षक कहने वाले पांडवों को प्रजा-हित का सच्चा रक्षक बनना पड़ेगा। अपनी एक चोटी के लिए इतना बड़ा महाभारत मचवानेवाली द्रौपदी को समस्त स्त्री-समाज की चोटियों को सुरक्षित करने वाली राज्य-व्यवस्था उत्पन्न करवानी होगी।"

"युधिष्ठिर का मुकुट इनके लिए बड़ा भारी सिद्ध होगा। लेकिन युधिष्ठिर महात्मा हैं। अतः अपने भार को वहन करने में ज़रा भी नहीं घबरायंगे। परन्तु महाराज ! आपने नवयुग के निर्माण की बात छेड़ी है। इसलिए मेरा भी कुछ कहने को

मन हो रहा है। आज आर्यावर्त कुरुक्षत्र के घोर संग्राम के परिणाम भोग रहा है। इस युद्ध ने जो वातावरण पैदा किया, वैर और 'बदले' की जो हृदय घबराने वाली भावना फैलाई, उसका क्या होगा ? इस भारत से जो युद्ध का मानस बन गया वह क्या केवल युद्ध के समाप्त होने से नष्ट हो जायगा ? महा-राज ! आप महापुरुष हैं, इसलिए आप अधिक समझ सकते हैं; परन्तु मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य सब विघ्नों की अपेक्षा, युद्ध का यह मानस ही धर्मराज को अधिक कष्ट देगा और नवयुग के निर्माण में बाधक बनेगा।"

भीष्म की बात बड़े ध्यान से सुनकर श्रीकृष्ण बोले, "पितामह ! आपने रोग को भली-भांति परख लिया है। धर्म-युद्ध की पताका के नीचे लड़नेवाले सब धर्म-बुद्धि से ही लड़ते हों, ऐसा नहीं होता। समाज के जीवन में जब युद्ध के भयंकर झंझावात आते हैं तब महा संहार हो जाता है और सृष्टि फिर नया क्रम आरम्भ करती है। इस युद्ध के लिए भी ऐसा समझो। युद्ध का मानस तो आज अभी हवा में घूम रहा है। उस युद्ध के मानस का उपयोग, समाज की भीतरी कलह शान्त करने में लोगों की आर्थिक दशा सुधारने में, राज्य के शासन-कार्यों में और इसी प्रकार की अनेक प्रवृत्तियों में कर लिया जाय तो नये युग के निर्माण में युधिष्ठिर को बड़ी अनुकूलता प्राप्त हो जाय। परन्तु मुझे भय है कि ऐसा नहीं होगा। संसार का आजतक का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिन्होंने शत्रुओं को नष्ट करके विजय प्राप्त की है, वे पीछे से आपस में लड़े हैं और कभी-कभी समाप्त भी हो गए हैं।"

"महाराज श्रीकृष्ण ! दूसरा कोई रास्ता आपने सोचा है ?"

"इसके विषय में मुझे थोड़े ही सोचना है।"

"यह कैसे हो सकता है ? "आपको नहीं तो क्या इस शैया पर पड़-पड़े मुझे सोचना है ? आप ही को यह विचार करना

है। धर्म-राज्य स्थापित करने का मनोरथ और कर्तव्य युधिष्ठिर का है; परन्तु यदि यह धर्म-राज्य स्थापित न हुआ तो इसका सारा दोष लोग आपके सिर मढ़ेंगे। मैं आपके जीवन के रहस्य से अच्छी तरह परिचित हूं। आपने जन्म से लेकर आज तक अनेक अत्याचारियों को समाप्त कर दिया है। परन्तु उन अत्याचारियों को हटाकर उनकी जगह किसे स्थापित करेंगे, यह निश्चित करने की आवश्यकता क्या नहीं है? अत्याचारियों को हटाना तो आधा कार्य हुआ, शेष आधा अगर न हुआ तो प्रथम आधे का क्या अर्थ?"

"पितामह?" श्रीकृष्ण सोचते हुए बोले, "आप तो मुझे बड़े गहरे पानी में ले गए हैं; परन्तु आज मैं इतना ही कह सकता हूँ कि राज-मद से चूर कौरव मिट गए और पांडव हस्तिनापुर के स्वामी बन गए। इस युद्ध में विजयी होने से पहले पांडव जिस तपश्चर्या में से गुजरे हैं, उससे मैं कह सकता हूँ कि उन्हें राज-मद नहीं चढ़ेगा। वैसे तो आज स्वयं अपने कुल में भी मैं इस युद्ध-मानस को देख रहा हूँ। द्वारका छोड़े मुझे बहुत समय हुआ; परन्तु युद्ध से लौटे हुए सात्यकि, कृतवर्मा आदि युद्ध का मानस अपने साथ ही लेते गए हैं। इसके अतिरिक्त जिन लोगों के बलराम जैसे अगुआ मदिरा पीते हों, उन लोगों में युद्ध के दावानल को सुलगते कितनी देर लगती है? ऐसे हिंसात्मक युद्धों में ये दोष अनिवार्य हैं और जबतक ईश्वर हमें दूसरे प्रकार के युद्ध के मार्ग पर लगावे, तबतक इन दोषों को भी हमें आवश्यक रूप में स्वीकार करना पड़ेगा।"

"महाराज श्रीकृष्ण! जब आपने सती गांधारी का शाप सहर्ष स्वीकार किया तब मुझे ऐसा जान पड़ा था कि आपने यह सब देख लिया है।"

"पितामह! यह सब मेरे ध्यान से बाहर नहीं है। जिस प्रकार कुरुकुल का विनाश आज हम सबने देखा है, उसी प्रकार अपने

यादव-कुल का संहार भी मैं देख रहा हूँ। उनके युद्ध से भरे मानस को नया युद्ध पैदा कर लेने की जिस तैयारी की आवश्यकता है, वह सारी आज यादवों में विद्यमान है। यादवों में अन्दर-ही-अन्दर फूट है। यादव-युवक ब्राह्मणों का अपमान करने में अपनी जवानी को धन्य मानते हैं। यादवों में मदिरा के व्यसन ने घर कर लिया है। यादवों ने पश्चिम समुद्र-तट पर विदेशी आक्रमण को रोकने के लिए जो शिविर बनाया है, उसका उन्हें बड़ा गर्व है। यह सारी सामग्री तैयार है। केवल उसमें आग की एक चिनगारी पड़ने की देर है। और पितामह! मुझे भास हो रहा है कि हमारा विनाश भी आ ही पहुंचा है।"

"महाराज श्रीकृष्ण! यदि भविष्य में ऐसा ही होना है तो यह सब किसलिए? आपने जन्म से लेकर आज तक अनेक अत्याचारियों के गर्व गलित किये और जरासन्ध तथा शिशुपाल के समान मदान्ध राजाओं के धड़ मस्तक से अलग कर दिये। भीष्म और द्रोण जैसे महारथी युद्ध में नष्ट हुए। दुर्योधन और कर्ण जैसे कुरुक्षेत्र में सो गए। यह सब आपके कारण हुआ। पृथ्वी का भार उतारने के लिए आपने यह सब किया। फिर भी यदि अभी आपके लिए यादवों का विनाश देखना शेष है तो यह सब किसलिए?"

"भीष्म! आप भूल रहे हैं। जन्म लेकर मैंने स्वयं ऐसे अभिमानियों का गर्व चूर्ण करने में जीवन बिताया है यह सच है। इसका मुझे जन्म से ही व्यसन हो गया है। दलित लोगों को जब ऐसे अत्याचारियों के हाथ से छुड़ाता हूं तब मेरे हृदय में दीपक जल उठते हैं। अब यदि काल की इच्छानुसार मेरे यादव भी ऐसे गर्विष्ठ हो जायं और उनका गर्व उतरने में उनका विनाश हो जाय तो मैं क्या कर सकता हूँ? मैं समझता हूँ कि हमारे आर्यावर्त की प्रजा ने बहुत समय तक यह अभिमान सहन कर लिया है। आज अब काल अपना विराट् स्वरूप

लेकर उठा है और वह किसी भी व्यक्ति या समूह के इस अभिमान को टिकने नहीं देगा। यादव यदि इस बात को न समझें और अन्दर-ही-अन्दर लड़ मरें तो मैं क्या कर सकता हूँ ? यादवों में जब आपस में यह गृह-कलह छिड़ेगा तब मैं तो काल भगवान को स्मरण करूँगा और अपने जीवन को समेटकर चलता बनूँगा।. स्वयं मेरे यादव ही जब इस प्रकार करेंगे तब मेरे जीने का प्रयोजन भी नहीं रहेगा। मैं तो उस काल के पूर्व-चिह्न देख रहा हूं।"

"तो फिर महाराज ! आपने जो कौरवों का संहार कराया और धर्मराज को राज्य दिलाने का कष्ट उठाया, वह व्यर्थ हुआ ?"

"व्यर्थ क्यों हुआ ? मैंने जो कुछ किया है, वह मेरे लिए तो व्यर्थ हो ही नहीं सकता। भारतवर्ष के दलित जनों की सेवा करने के लिए मैंने यह मार्ग ग्रहण किया, इससे मुझे संतोष है। अब भी जबतक जिऊँगा तबतक अभिमानियों का अभिमान दूर करने का प्रयत्न करता ही रहूँगा। वैसे मैंने यह कब समझा है कि दुनिया से अत्याचार और गर्व एकदम अदृश्य हो जायंगे ? आज क्षत्रिय गर्वोन्मत्त होकर लोगों को पीड़ित कर रहे थे तो उनका गर्व गलित करने का काम मैंने हाथ में लिया; कल समाज का कोई दूसरा वर्ग गर्वोन्मत्त हो उठेगा तो कोई अन्य पुरुष मैदान में आयगा। मैं अपने जीवन को अच्छी तरह बिता दूँ, इतना ही क्या मेरे लिए पर्याप्त नहीं है ?"

"महाराज ! मैं तो आपको ईश्वर का अवतार मानता हूँ। भारत के ऋषि-मुनियों ने तो आपको कभी से पहचान लिया है। आपने और अर्जुन ने भारतवर्ष के गर्विष्ठ क्षत्रियों को साफ करके नवयुग के लिए भूमि तैयार की है। अब उस भूमि में क्या उगेगा और क्या नहीं उगेगा, यह देखना आपका काम नहीं है। श्रीकृष्ण ! जिस युग को आपने साफ किया है, उसका

एक साधारण मनुष्य मैं, आपके चरणों में मस्तक रखता हूं। जीवन के किनारे बैठा हुआ मैं आज आपको अन्तिम प्रणाम करता हूँ। आप जाइये और आपका जो अवतार कृत्य बाकी रह गया हो, उसे पूरा करिये। काल को तो अपना काम पूरा करते ही रहना है। प्रभो! भीष्म का आपको अन्तिम प्रणाम!"

"पितामह!" श्रीकृष्ण खड़े होते हुए बोले, "आपने मुझे बहुत बड़ा बना दिया। मुझे जो सूझ पड़ा, वही मैंने आजतक किया। करने की योग्यता ईश्वर ने मुझे अधिक दी, इसके लिए उसका कृतज्ञ हूँ; अन्यथा कृष्ण का यह शरीर और किस काम आने वाला था? लोक-सेवा का ऐसा अवसर मुझे मिला, इसका मुझे गर्व है। पितामह! आपको आज बड़ा कष्ट हुआ। आपके शरीर में जबतक प्राण हैं तबतक मेरे जैसे लोग किसी-न-किसी आशा से आपको कष्ट देते ही रहेंगे। पुराण-युग के जितने कल्याणकारी तत्त्व आपसे प्राप्त हो सकते हैं, उतने अन्य किससे हो सकते हैं? इसीलिए नवयुग के विधाता अर्जुन ने आपको शर-शैया पर सुला दिया है। उत्तरायण सूर्य के न उगने तक आप शर-शैया पर पड़े रहें, इसी में नवयुग का कल्याण है। अब मैं आज्ञा लेता हूँ।"

इतना कहकर श्रीकृष्ण रथ में बैठे और भीष्म से उन्होंने विदा ली।

"प्रभो! भीष्म का अन्तिम प्रणाम!"

भीष्म शर-शैया पर से जरा ऊँचे उठकर रथ को देखते रहे। रथ धीरे-धीरे अदृश्य हो गया और पृथ्वी पर अन्धकार की छाया फैल गई।

१० / परीक्षित जन्म

"भाई विदुर !" एक विशाल सिंहासन पर लेटे हुए धृतराष्ट्र बोले, "आज अब मेरी बांहें टूट गई हैं। इसलिए तुम जो कहो, उसे करने के लिए धृतराष्ट्र तैयार है; परन्तु तुम मेरे हृदय की बात सुनना चाहो तो मैं कहूंगा कि श्रीकृष्ण के जैसा ठग और कोई नहीं है।"

"भैया, आप भूलते हैं।" विदुर ने कहा।

"मैं भूल सकता हूँ ? दुर्योधन का पिता भूल सकता है ! तुम लोगों ने कृष्ण को अभी पहचाना नहीं है। विदुर ! मैं सच कहता हूँ। मेरे पुत्रों को मारने वाला यह कृष्ण ही है। यदि ऐसा न होता तो सती गांधारी उसे शाप देती ? जिसने जीवन भर असत्य का उच्चारण नहीं किया उसी गांधारी ने जब शाप दिया तभी मैं समझ गया था कि वह बड़ा धूर्त है।"

"भैया ! श्रीकृष्ण जैसे परम पुरुष के साथ आप अन्याय कर रहे हैं। उनका नाम लेते ही भव-भव के पाप नाश होते हैं, ऐसा उनका निर्मल जीवन है !..."

"निर्मल जीवन !" धृतराष्ट्र बीच में ही बोल उठे, "ऐसी निर्मलता उसी के पास रहे !"

"उनकी त्याग-वृत्ति, उनकी सत्य-प्रियता, उनकी निर्भयता ये सब असाधारण हैं, इसीलिए भगवान् व्यास जैसे जगत् के ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण भी उनका महापुरुष के रूप में सम्मान करते हैं।"

"विदुर !" धृतराष्ट्र ने हाथ लम्बा करते हुए कहा, "तुम जैसे भक्तों के महापुरुष कह देने से ही वह महापुरुष हो गया ? अपनी दृष्टि से हम जिसे अनेक प्रपंच करते हुए देखें, हजारों मनुष्यों के बीच जिसे असत्य और अधर्म का आचरण करते

देखें, उसे महापुरुष कैसे मान लें ? उसके काम तो देखो । अपने मामा को उसने मारा, मथुरा छोड़ कर वह भागा, रुक्मिणी को भगाकर वह ले गया, गोकुल के गोप-जनों के घर उसने बिगाड़े, युधिष्ठिर से झूठ उसने बुलवाया, मेरे पुत्र को अधर्म से उसने मरवाया, ऐसा यह कृष्ण है ! वह यदि महापुरुष हो तो फिर दुनिया में धूर्त्त और लफंगा किसे कहा जायगा ?"

"भैया !" विदुर दीर्घ निःश्वास छोड़कर बोले, "आपकी आँखों से श्रीकृष्ण ऐसे ही दिखाई पड़ेंगे ।"

"जैसा है, वैसा ही मुझे तो वह दीखता है । हाँ, हाँ, उसकी बुद्धि तीव्र है । इसीसे सबको उलटा-सीधा समझाकर और अनेक चालें चलकर अपनी सोची हुई बात को पूरी कर लेता है। मेरा दुर्योधन उसके जाल में नहीं फँसा, इसीलिए उसे मरवा डाला । वह बड़ा ही दुष्ट है । एक बार कोई उसके पंजे में फंसा कि फिर निकलना कठिन है । ये सब बातें यदि किसी मनुष्य को महापुरुष बना सकती हैं तो ऐसे महापुरुष को दूर से ही नमस्कार है !"

"भैया !" इन सब पुरानी बातों को छोड़िये । मैं आपको नई बात बताता हूँ !"

"कौन-सी ?"

"उत्तरा के गर्भ की । यह तो आप जानते हैं कि पांडव दिग्विजय के लिए हिमालय की ओर गये हैं । आज उत्तरा को प्रसव हुआ; परन्तु मरा हुआ पुत्र जन्मा ।"

"मरा हुआ तो होना ही था ! अश्वत्थामा ब्राह्मण-पुत्र था । उसने जब उत्तरा के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया तो और हो भी क्या सकता था ? कहो न अपने कृष्ण से कि उस पुत्र को जीवित करे ? धृतराष्ट्र और गांधारी की संतति का उच्छेद कर दिया तो क्या कुन्ती और पांडु की संतति बच रहेगी ?"

"परन्तु भैया ! उस मरे हुए पुत्र को श्रीकृष्ण ने जीवित कर

दिया।"

"हैं?" धृतराष्ट्र आंखें फाड़कर बोले, "वह जीवित नहीं हो सकता। किसी ने तुम्हें झूठे समाचार दिये हैं!"

"किसी ने नहीं, मेरी आँखों देखी बात है।"

"क्या सचमुच वह जीवित हो गया? कदाचित् क्षण-दो-क्षण के लिए झूठी साँस चलती दिखा दी होगी!"

"नहीं भैया! ऐसी वात नहीं है। मैं उसे श्वास लेते और रुदन करते देखकर आया हूँ।"

"तो यह होगी उस कृष्ण की ही कोई करतूत!"

"यही बात है। परन्तु जिसे आप करतूत कहते हैं, उसे ही मैं उनकी ईश्वरीय शक्ति कहता हूँ।"

"ठीक, ठीक। फिर आगे क्या हुआ?"

"मरा हुआ पुत्र उत्पन्न हुआ, इससे सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ता और उत्तरा आदि सब स्त्रियां विलाप करने लगीं। उनका विलाप सुनकर श्रीकृष्ण अन्दर गये और मरे हुए वालक को अपनी गोद में सुलाया।"

"फिर?"

"फिर पानी से आचमन करके श्रीकृष्ण बोले..."

"क्या बोले? बच्चे, जीवित हो जा। यही न?" धृतराष्ट्र ने आतुरता से कहा।

"वे जो कुछ बोले—वह जगत् के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। महाराज धृतराष्ट्र! आप अपनी इच्छा के अनुसार मानने का अधिकार रखते हैं। आप पुत्र-शोक से विह्वल हैं, इसलिए ऐसे महापुरुष को यथार्थ रूप में पहचानना नहीं चाहते; परन्तु यदि तटस्थ होकर सुनें तो आपको पता चले।"

"परन्तु वे क्या बोले—यह तो पहल कहो।" धृतराष्ट्र ने धर्य खोकर पूछा।

"पुत्र को गोद में लेकर उन्होंने कहा—'मैंने आज तक हँसी में भी असत्य-भाषण नहीं किया और युद्ध से विमुख नहीं हुआ। मेरे इस पुण्य से यह बालक जीवित हो जाय। मेरी धर्मप्रियता और धर्म के अधिष्ठाता ब्राह्मणों के प्रति रक्खे हुए पूज्य भाव के कारण अभिमन्यु का पुत्र जीवित हो जाय। मैंने विजय में भी दूसरों का विरोध नहीं किया, इस बात को लेकर इस बालक के प्राण लौट आएं। कंस और केशी का मैंने धर्म से नाश किया हो तो यह बालक फिर से सचेतन हो।' श्रीकृष्ण इतना बोल भी न पाये थे कि पुत्र के शरीर में चेतना आई और वह रोने लगा।"

"तब तो श्रीकृष्ण ने बड़ा ही जादू किया!"

"भैया! आप इसे जादू कहेंगे? श्रीकृष्ण ने इन वचनों से सारे संसार के न्यायालय में अपनी साधुता सिद्ध की है और ईश्वर ने उस पुत्र को जीवित करके उस साधुता पर मुहर लगा दी है।"

विदुर ने कुछ रुककर आगे कहा, "उन्होंने यदि मंत्र-तंत्र से पुत्र को जीवित करने का प्रयत्न किया होता तो मैं भी विचार करता; परन्तु यह तो सत्य की, निर्वैर की, निर्भयता की और भूत-दया की जीवन-भर उपासना करनेवाले एक समर्थ प्रभावशाली पुरुष की प्रार्थना थी। ईश्वर ने उस प्रार्थना को स्वीकार करके श्रीकृष्ण को महापुरुष के रूप में स्वीकार किया है।"

"विदुर! सत्य कहूं? वह पुत्र मरा हुआ नहीं होगा; परन्तु ब्रह्मरन्ध्र में उसके प्राण रुक गये होंगे। इसीसे सबको मरा हुआ प्रतीत हुआ होगा। श्रीकृष्ण ने उसे गोद में सुलाकर माथे में कुछ किया होगा, इससे वह जीवित हो गया। इसके लिए इतना बड़ा आडम्बर न किया होता तो भी काम चल सकता था; परन्तु आडम्बर न करे तो तुम जैसे लोग उसके पैरों में लोटें किस प्रकार?"

"भैया ! मैं आपसे हार गया। जिस-जिस बात को मैं श्रीकृष्ण के जीवन का रहस्य मानता हूं, उसे ही आप उनकी धूर्तता का चिह्न रूप समझते हैं।"

"है भी यही बात। जब तुम विशेष रूप से उसकी बात करने आये हो तब मुझे अपने विचार तुम्हें स्पष्ट ही बताने चाहिएं। परन्तु यह बात किसी से न कहना। अभी मुझे युधिष्ठिर के साथ दिन बिताने हैं। वैसे कृष्ण हैं जबर्दस्त, इसमें सन्देह नहीं। उसके जैसा अन्य कोई नहीं।"

"भैया ! अब मैं आज्ञा लेता हूँ।"

"देखना विदुर ! बुरा न मानना। वह विशेष मनुष्य है, यह तो मुझे भी जान पड़ता है। सच पूछो तो मैं उसे समझ नहीं सकता। उसका सारा जीवन इतना विचित्र है। तुम्हारी बात मेरे गले नहीं उतरती। महापुरुषों के ऐसे काम होते हैं ? न उसमें दया है, न सत्य है, न शास्त्रों के प्रति पूज्य भाव है, न किसी से लज्जा है, न कोई दिव्य शक्ति है। जिधर देखो उधर काले कर्म ही दृष्टि पड़ते हैं। ऐसे पुरुष को कौन महापुरुष कहे ?"

"भैया ! मैं जा रहा हूँ।"

"अच्छा भाई, जाओ। बुरा न मानना। यह तो हम दोनों की निजी बातें हैं। मेरे लिए बात करने को एक तुम्हीं तो हो। इसलिए जो मन में आया, कह दिया है। मुझे एक यही दुःख है कि तुम सबों को उसने भ्रम में डाल दिया है।"

विदुर बड़े भाई से विदा होकर चल दिये और धृतराष्ट्र फिर लेट गये।

११ / यादवस्थली

महाराज युधिष्ठिर का अश्वमेघ-यज्ञ पूरा हुआ और श्रीकृष्ण द्वारका लौट आए। आज तक जिस राज-मद को उतारने के लिए श्रीकृष्ण ने जीवन विताया था और जिस राज-मद को भारतवर्ष से उखाड़ डालने के लिए कुरुक्षेत्र में महायुद्ध आरम्भ हुआ था, वही राज-मद आज स्वयं यादवों के अन्दर आ घुसा। द्यूत और मदिरा का यादवों को व्यसन हो गया। महाराज वसुदेव ने मदिरा का निषेध किया; परन्तु यादव उस निषेध को पार कर गये। युवक यादव धर्म और समाज के अनेक वंधनों को तोड़ने लगे। तपश्चर्या या संयम उनकी समझ में वैदिकों का व्यसन था।

एक वार अनेक यादव-कुमार मौज में आ गए। द्वारका की सीमा पर एक तपस्वी आये थे। कुमार उस तपस्वी के साथ अनुचित विनोद करने लगे। तपस्वी ने सब सह लिया।

थोड़ी देर के वाद कुमारों ने श्रीकृष्ण के पुत्र सांब को स्त्री का वेश धारण कराया और उसका बड़ा-सा पेट बनाकर उसे तपस्वी के पास लाये।

"महाराज!" एक युवक बोला, "यह स्त्री आपसे आशीर्वाद लेने आई है।"

तीसरे युवक ने कहा, "यदि आप सच्चे योगी हैं तो बताइये कि इस स्त्री के क्या उत्पन्न होगा?"

सांब भली-भांति वेश सजाकर खड़ा था। तपस्वी ने जरा ऊपर देखा और सांब को नख से शिख तक निहारकर वह फिर अपनी दृष्टि नीचे करके भूमि खोदने लगा।

एक युवक बोल उठा, "महाराज! कुंडली में क्या आता है?'

बोले, "कुंडली के हिसाब से तुम सबकी मृत्यु आती है।"

युवक ने धृष्टता से पूछा, "मृत्यु हमारी या तुम्हारी, यह बात तो पीछे होगी; परन्तु इस स्त्री के पेट से क्या जन्मेगा, यह तो पहले बताओ। कुछ ग्रह-लग्न का भी ज्ञान है या यों ही भगवे कपड़े पहन लिये हैं ?"

तपस्वी कुछ क्रोध से बोला, "सचमुच जानना चाहते हो ? तो लो सुनो। इस स्त्री के पेट से जो जन्मेगा, उससे तुम सबका विनाश होगा। गर्भ में वह कभी से परिपक्व हो चुका है। जाओ, अपने सब वृद्धों से कह दो कि तैयार रहें।"

ऋषि के शब्द सुनकर सांब स्तब्ध रह गया। बाकी सब युवक खिलखिलाकर हँस पड़े और कहने लगे, "महाराज ! यह स्त्री नहीं, साँब है। आप ऐसी ही गप्पें हांका करते हैं न ?"

तपस्वी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। और सांब आदि यादव घर की ओर चल दिये।

❁

एक बार यादव ग्रहण के कारण समुद्र-स्नान के लिए प्रभास गए। द्वारका में राजा वसुदेव ने प्रकट रूप में मदिरा-निषेध कर दिया था। प्रभास में यादवों ने उस निषेध को ठुकरा डाला।

एक यादव बोला, "मदिरा के लिए निषेध हुआ है, यह भूल गया ?"

"निषेध द्वारिका के लिए है, प्रभास में पी जा सकती है।" दूसरे ने उत्तर दिया।

"ऐसे उत्सव के दिन मदिरा न पी तो फिर पियें कब ?"

"सच बात तो यह है कि ऐसे सरस पेय के लिए निषेध करने का वसुदेव को कोई अधिकार नहीं।" एक ने कहा।

"भाइयो !" बीच में ही दूसरा बोला, "तुम्हें ऐसी उल्टी-सीधी बातें क्यों सूझती हैं ? चढ़ाते जाओ न भले-मानस ! ऐसी चर्चाएँ तो छोटे बच्चे किया करते हैं।"

"परन्तु भाई !" फिर एक ने कहा, "हम इन श्रीकृष्ण

ग्रौर बलराम के देखते पियें, यह ठीक नहीं। चलो, जरा दूर जाकर पियें।"

"चल हट !" तुरन्त ही युवक बोल उठा, "हमें इस प्रकार का ढोंग नहीं ग्राता। पियें भी, तो चोरी से क्यों पियें ? ऐसा ढोंग तुम्हीं करो। ग्रन्दर कुछ ग्रौर बाहर कुछ ग्रौर, यह तुम्हें ही करना ग्राता है। हम तो हैं सीधे ग्रादमी।"

"परन्तु," पहले ने उत्तर दिया, "जो शोभा दे, वही करना चाहिए। रह नहीं सकते, इसलिए गुप्त रूप से पी लेते हैं, परन्तु इस प्रकार सबके देखते पीने में लज्जा नहीं ग्राएगी ? ऐसा हम कौन-सा पुण्य-कार्य कर रहे हैं कि ग्रन्दर ग्रौर बाहर ग्रौर की बात कह रहे हों ? इतनी मर्यादा भी छोड़ दोगे तो फिर एकदम हाथ से निकल जाग्रोगे। ग्रब भी मान जाग्रो।"

"जाग्रो, जाग्रो !" उत्तर मिला, "ग्रपने राम तो पियेंगे ग्रौर ग्रवश्य पियेंगे ! बलराम ग्रौर श्रीकृष्ण के देखते पियेंगे। उन्हें पता लगेगा तो वे महाराज वसुदेव से कहकर निषेध हटवा देंगे।"

"परन्तु जानता है ?" एक ने धीरे से कहा, "बलराम स्वयं क्या करते हैं ? जरा-सी उन्हें भी दे दो तो झगड़ा ही मिट जाय। इतनी लम्बी चर्चा करने की जरूरत ही क्या है ?"

"फिर थोड़ी-सी श्रीकृष्ण को भी।" दूसरा बोला।

"वे कभी नहीं पीते।" पहले ने कहा।

"पीते नहीं, यह तो सभी जानते हैं। परन्तु देने में क्या हानि है ? पी लेंगे तो ठीक है, ग्रन्यथा हम तो पीने के लिए हैं ही।" किसी ने समर्थन किया।

सात्यकि ग्रौर कृतवर्मा, दोनों यादव थे। कुरुक्षेत्र के युद्ध में सात्यकि पांडवों की ग्रोर से लड़ा था ग्रौर कृतवर्मा कौरवों की ग्रोर से। जब ग्रश्वत्थामा ने काल-रात्रि को पांचालों का शैया में वध किया तब कृतवर्मा उसके साथ सम्मिलित था।

एक बार प्रभास में यादव वीर कुरुक्षेत्र की कड़वी-मीठी बातें स्मरण कर रहे थे। सांब, चारुदेष्ण, प्रद्युम्न आदि श्रीकृष्ण के पुत्र भी उपस्थित थे। सात्यकि ने कहा, "कृतवर्मा! श्रीकृष्ण तो सब ठीक है; परन्तु तेरे जैसे मनुष्य ने रात्रि में पांचालों के वध में भाग लिया, यह मुझसे सहन नहीं होता।"

कृतवर्मा तेज होकर बोले, "तो इसमें कौन-सा बड़ा पाप हो गया? कहता तो हूं कि जो हो गया सो हो गया।"

"फिर भी तुझे उसका प्रायश्चित करना चाहिए।"

"प्रायश्चित तुझे करना चाहिए—भूरिश्रवा को मारा था, इसलिए।"

"कृतवर्मा!" सात्यकि चिढ़ उठा, "तू अपनी मर्यादा की सीमा न लांघ। तेरे जैसे अघोर कर्म आज तक किसी यादव ने नहीं किये! तुझे मेरी प्रतिष्ठा से ईर्ष्या होती है?"

"ईर्ष्या होने की क्या बात है?" कृतवर्मा फिर झल्ला पड़ा। तुझे अभिमान हो गया है, इसलिए ऐसी उखड़ी बातें कर रहा है। श्रीकृष्ण ने तुझे बहुत सिर पर चढ़ा लिया लगता है।"

सांब ने शान्ति के साथ कहा, "दोनों शान्त हो जाओ। इन बातों में कोई सार नहीं है। क्यों व्यर्थ झगड़ रहे हो?"

"कृतवर्मा!" सात्यकि ने ललकारा, "मेरा पराक्रम और प्रतिष्ठा सहन न होती हो तो आ जा मैदान में।"

प्रद्युम्न ने बीच में पड़कर कहा, "पर तुम दोनों व्यर्थ लड़ रहे हो।"

"यह सात्यकि लड़ना चाहता है, इसलिए कोई-न-कोई बहाना खोज रहा है।"

"भाई, मैं लड़ना तो नहीं चाहता।" सात्यकि ने कहा, "परन्तु तू सारे यादव-कुल को कलंक लगा रहा है, इसलिए बोल रहा हूं।"

चारुदेष्ण अपनी जगह से उठकर सात्यकि के निकट आया

और बोला, "अब तो छोड़ो भी इस बात को !"

"छोड़े कैसे ? सात्यकि को अपना पराक्रम जो दिखाना है !" कृतवर्मा ने कहा, "सात्यकि ! यदि यह कुरुक्षेत्र होता तब तो तुम्हें अभी बता देता ।"

सात्यकि एकदम खड़ा हो गया। उसका हाथ तलवार पर पड़ा और वह कृतवर्मा की ओर दौड़ा। कृतवर्मा तो सुलग ही रहा था। देखते-देखते कोलाहल बढ़ गया और सूखे घास के ढेर में चिनगारी पड़ने पर जिस तरह आग भड़क उठती है, उसी तरह सारे यावव भड़क उठे। आपस में युद्ध आरम्भ हो गया। सारे यादव एक या दूसरे पक्ष में सम्मिलित हो गये। मार-काट मच गई। पहले यादव मूसल हाथ में लेकर लड़े और बाद में जो कुछ भी हाथ में आया वही शस्त्र बन गया। प्रभास के किनारे पड़ी हुई रेत का यादवों ने शस्त्र रूप में खुलकर उपयोग किया। यादवों के इस कलह की श्रीकृष्ण को भी खबर मिली। अनेक यादव उनको भी मारने दौड़े। श्रीकृष्ण के पुत्रों ने यथा-रीति इस युद्ध में भाग लिया और लड़ते हुए मर गये।

इस महाकलह के परिणाम स्वरूप सारे यादव मर गये; केवल श्रीकृष्ण और बलराम बाकी बचे। सागर के तट पर खड़े-खड़े श्रीकृष्ण ने यह यादवस्थली देख ली—उसी तरह, जैसे कोई महासागर में तैरते हुए जहाज को एकाएक डूबते हुए देखता है, जैसे पर्वत के शिखर पर खड़ा हुआ आदमी नीचे के किसी जंगल में दावानल लगते देखता है। सागर के तट पर सोये हुए समस्त यादवों के शवों पर एक दृष्टि डालकर श्रीकृष्ण द्वारका आये और सीधे वसुदेव के महल में गये। देवकी माता भी वहां उपस्थित थीं। दोनों के चरणों में श्रीकृष्ण ने मस्तक टेका, दोनों को महा-संहार के समाचार सुनाये और आज्ञा माँगी। यादवों के समाचार सुनकर वसुदेव को बड़ा ही खेद हुआ और देवकी तो स्तब्ध ही हो गई।

"माताजी !" श्रीकृष्ण ने कहा, "मुझे आज्ञा दीजिए। अब मेरा समय भी आ पहुंचा है। बलराम से अपनी प्रतिज्ञा करने के लिए कह आया हूं।"

देवकी की आंखों में आँसू वह चले। वोली, "बेटा ! हमें इसी तरह छोड़ जाओगे?"

"माताजी !" श्रीकृष्ण वोले, "यह जीवन ही ऐसा है।"

"परन्तु कृष्ण !" वसुदेव ने कहा, यादवों को यह क्या हुआ?"

श्रीकृष्ण ने शान्ति से उत्तर दिया, "पिताजी ! यह काल का बल है, अन्यथा सात्यकि और कृतवर्मा दोनों समझदार और शक्तिशाली थे। यादव उनपर अभिमान कर सकते थे। वे दोनों लड़ पड़े और सारे कुल का संहार हो गया !"

"तुमने या बलराम ने उन्हें रोका भी नहीं?" देवकी बोली।

"माताजी !" श्रीकृष्ण ने कहा, "काल किसी को तलवार से नहीं मारता, वरन् मनुष्य की बुद्धि को ही पलट देता है। ऐसे समय पर समझदार लोगों की समझ भी छिप जाती है। संसार में किस समय कौन-से वल काम कर रहे होते हैं, यह जानना वड़ा कठिन है। पिताजी ! जीवन-भर मदोन्मत्त राजा-महाराजाओं का विनाश करने पर भी आज वह मद यादवों में ही प्रविष्ट हो गया तब मेरे हाथ नीचे गिर गये। जिस प्रकार कौरवों की हरी-भरी वाटिका कुरुक्षेत्र में छिन्न-भिन्न हो गई। उसी प्रकार आज हमारी यादवों की वाटिका भी वीरान हो गई। उसे देखकर ही मैं आ रहा हूं। पिताजी, अब तो समझदारी से प्रभु की गोद में सिर रखना और उसकी इच्छा के अधीन होकर रहना, यही एक मार्ग है। मेरे यादवों के इस नाश का साक्षी बनाने में भी कोई ईश्वरीय संकेत होगा, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। आप मुझे आज्ञा दीजिये।"

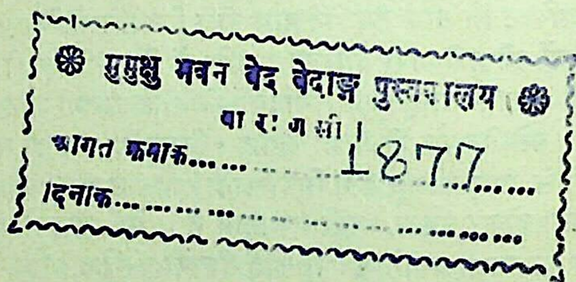
देवकी बोली, इन सब स्त्रियों और बच्चों का क्या होगा ?"

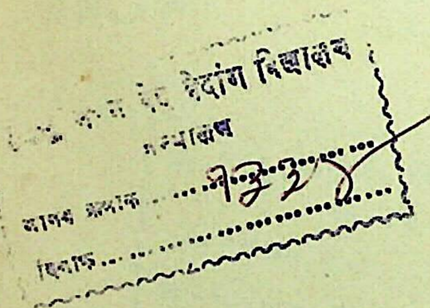
"माता जी ! मैं दारुक को अर्जुन के पास हस्तिनापुर भेज रहा हूं। अर्जुन आकर इन स्त्रियों और बच्चों को ले जायगा।"

"और यह द्वारका ?" वसुदेव ने पूछा।

"द्वारका पर तो आप काल को मँडराया समझें। द्वारका जैसी अनेक राजधानियाँ सागर की गोदी में समा गई हैं। जगत् के किसी गूढ़ संकेत का अनुसरण करके काल-महासागर की लहरें कभी-कभी सारे मानव-सागर को निगल जाती हैं। कुछ वर्ष पहले ये लहरें कुरुक्षेत्र के मैदान पर फिर आई थीं और आज द्वारका पर फिरी हुई समझें। पिताजी ! माताजी ! कृष्ण का अंतिम प्रणाम। अब मैं और विलम्ब नहीं कर सकता।"

इतना कहकर फिर से एक बार माता-पिता के चरणों में सिर रक्खा और दोनों को रोते छोड़कर श्रीकृष्ण चल पड़े। द्वारका से कुछ दूर एक वृक्ष के नीचे पैर टिकाकर खड़े हो गये। जरा नाम के किसी भील ने वाण मारा और वे निजधाम को सिधार गये।





महाभारत पात्र माला

□□

१. सूतपुत्र कर्ण
२. पांचाली द्रौपदी
३. दुर्योधन
४. महावीर भीमसेन
५. महारथी अर्जुन
६. धर्मराज युधिष्ठिर
७. कुन्ती : गांधारी
८. द्रोण : अश्वत्थामा
९. पितामह भीष्म
१०. धृतराष्ट्र
११. श्रीकृष्ण

□□

